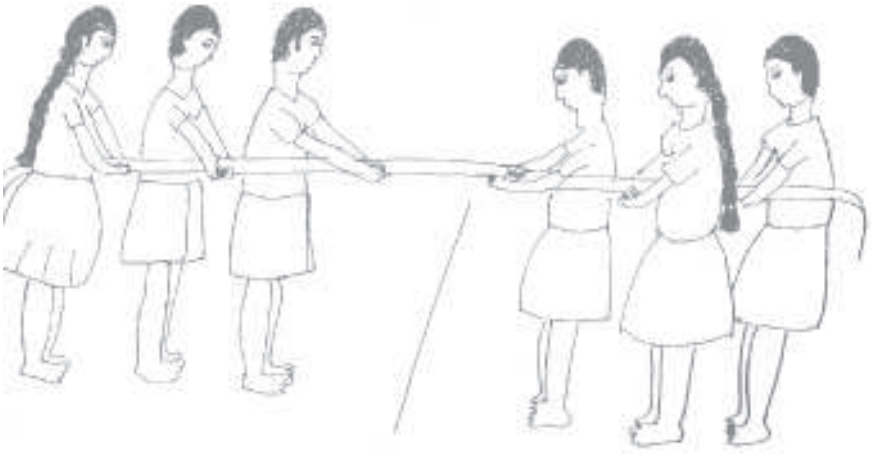

मालवी खेल

बच्चों के परम्परागत खेल एवं गीत

बंशीधर `बंधु'

मालवी खेल

बच्चों के परम्परागत खेल एवं गीत

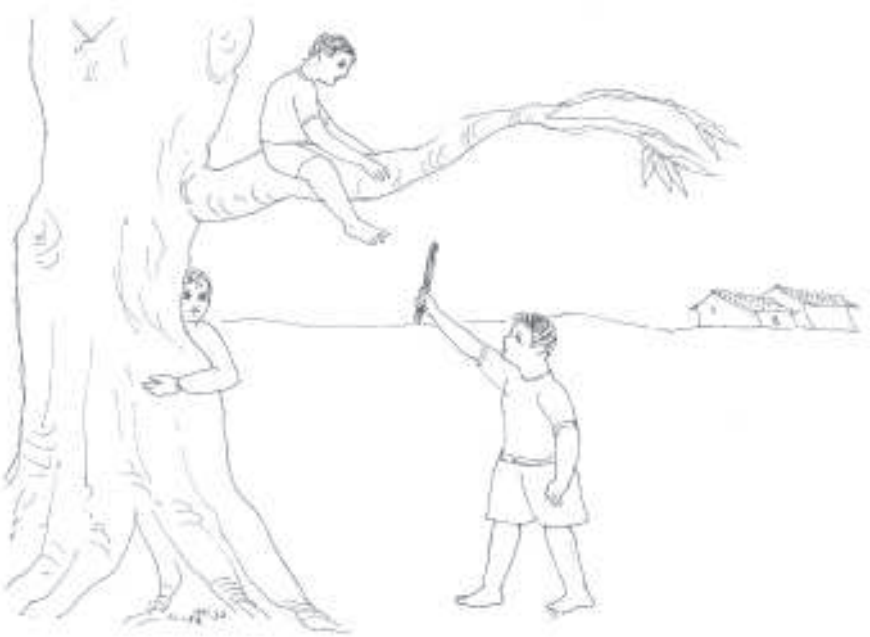

बंशीधर 'बंधु'

प्रधान सम्पादक
रेनू तिवारी

सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल का प्रकाशन

प्रकाशक – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स, भोपाल–462002
फोन – 0755–2661948, 2661640
E-mail : mplokkala@rediffmail.com
mptribalmuseum@gmail.com
web. : www.mptribalmuseum.com

प्रकाशन वर्ष – वर्ष 2015 प्रथम संस्करण

स्वत्वाधिकार – आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

मुद्रण – मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल

मूल्य – 300/– रुपये (तीन सौ केवल)

■ पुस्तक से सम्बन्धित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्य क्षेत्र भोपाल होगा।

■ पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री लेखक की है, आवश्यक नहीं कि प्रकाशक इससे सहमत हों।

ISBN - 978-93-83899-08-1

बचपन के खेल प्रयोजन रहित आनंद की लीला हैं। खेलना बच्चों का स्वभाव है। खेल-खेल में हमारी परम्परा उन्हें संस्कारित एवं स्मृतिवान बनाती है, फिर बच्चे जीवन भर इन खेलों को और उस खेल के आनंद को भुला नहीं पाते। इन खेलों में खेल के नियम केन्द्रीय नहीं होते, मूल्यवान है सिर्फ खेलना। बच्चे खेल-खेल में लड़ते-झगड़ते हैं, कुछ ही देर में फिर एक साथ मिलकर कोई दूसरा खेल खेलने लगते हैं। यह बाल स्वभाव बड़ा ही निश्छल होता है। समाज की किसी भी प्रकार की वर्जना का कोई मूल्य बच्चों और उनके खेलों में काम का नहीं होता। स्थानिक परिवेश और भूगोल खेलों के स्वरूप का निर्धारण करते हैं, बावजूद इसके बहुसंख्यक ऐसे खेल हैं- जो पूरे देश में प्राय: बच्चों द्वारा खेले जाते हैं, उनके नाम में भेद अवश्य हैं।

मध्यप्रदेश के सांस्कृतिक जनपदों में बच्चों द्वारा खेले जाने वाले खेलों, उनके स्वरूप और तत्सम्बधी गीतों का अध्ययन अकादमी द्वारा स्थानीय अध्येताओं से अनुरोध कर कराया जा रहा है। इस कड़ी में पहली पुस्तक 'मालवी खेल' आपके हाथ में है। इसका संकलन एवं अनुवाद श्री बंशीधर 'बंधु' ने हमारे अनुरोध पर किया है। अकादमी इनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

आशा है पारम्परिक खेलों के अध्ययन में रूचि रखने वाले पाठकों एवं अपनी ही स्मृति में लौटने के आतुर उत्सुकों के लिए उपयोगी होगी।

- अशोक मिश्र

अंतर्मन में बचपन छूते खेल

क्रीड़ा (खेल) वह शब्द जिससे हर अवस्था में आनंद की प्राप्ति होती है। इस अनुपम अनुभव के लिए स्वयं परमात्मा ने अवतार लेकर बाल सुलभ क्रीड़ाओं से सृष्टि का मन मोह लिया।

मालवा में संस्कृति एवम् परम्परा के सवंर्धन के लिए नित–नई सजावट के साथ कुछ न कुछ प्रयास किये जाते हैं। मालवा की सांस्कृतिक सम्पदा जितनी समृद्ध है, समाज उतना ही जागरूक। सेन जी की इन पक्तियों से ऐसा ही लगता है –

मोती की मनवार मालवो ममता भर्‌यो टिपारो।
धन–धन या मालव की धरती धन हे मनक जमारो॥

इस सम्पदा को सम्पन्नता का जामा पहनाने का काम यहाँ का साहित्य समाज बड़ी गंभीरता और सजगता से करता रहा है। इसी के सुखद परिणाम के रूप में हमारे हाथों में ' मालवी खेल'पुस्तक है। अपनी विलुप्त होती परम्परा को जीवंतता प्रदान करने का यह उत्कृष्ट कार्य मालवा के सुधी साहित्कार बंशीधर बंधु ने बड़ी आत्मीयता से किया है। खेल जैसे विषय पर कार्य करना और उसके यथोचित सामाजिक पहलू के परिष्कार का कार्य दुष्कर है।

खेल शारीरिक व्यायाम के साथ–साथ मानसिक पोषण और नई ऊर्जा देने का कार्य करता है। खेल से हम अपने पारम्परिक लोक व्यवहार को आत्मसात् करते जाते हैं। खेल सिर्फ खेलने या व्यायाम तक ही सीमित नहीं, अपितु इसके कई आयाम हैं।

साहित्य समाज श्री बंधीधर बंधु के इस विन्रम प्रयास के लिये अवश्य उद्दात मन से साधुवाद देगा। यह कृति सदैव चर्चा के केन्द्र में रहेगी, ऐसी शुभाकांक्षा के साथ इस सराहनीय एवं सारगर्भित प्रयास के लिए अभिनंदन।

बसंत पंचमी

33 .एम.आई.जी.पटेल नगर उज्जैन **जेड़ श्वेतिमा निगम**

एक लेखकीय लोक परिश्रम

आपके हाथों में एक बहुत मनभावन या कि दिलचस्प पुस्तक है। आप इसका कोई भी पृष्ठ पढ़ें, आपको इसमें आपके किशोर काल से लेकर उम्र के आज तक के समय में किसी न किसी खेल से सामना हो जायेगा। श्री बंशीधर बंधु ने अपनी खोजी दृष्टि से मालवा के घर– आँगन, मैदान, गली– मुहल्ले, खेत–खलिहान और बाग– बगीचों तथा पेड़–पौधों सभी को देख कर उसमें आस–पास खेले जाने वाले करीब सवा सौ खेलों को तकनीक सहित देखा और विस्तार से आपके सामने रख दिया। 'मालवी खेल परम्पराएँ' पढ़ते–पढ़ते आपको भी अपने द्वारा खेले गये खेलों की याद आ जायेगी। आप कहेंगे 'यह तो मैं भी खेलता था'या कि 'अरे ! यह खेल तो मैं नहीं खेला।' आपको आपके साथी सहभागी याद आ जायेंगे। आपने उन खेलों में जो परिणाम प्राप्त किये, उनकी यादें ताजा हो जायेंगी। आपके द्वारा खेले गये खेलों में आपने 'फाऊल' याद आने पर आप हँसे बिना नहीं रहेंगे। अपने खेलों में आपके निर्णायक, रेफरी, दर्शक और न जाने कौन–कौन याद आयेंगे।

लेखक ने जहाँ 'मालवा' के भूगोल को अपने अध्ययन का बिन्दु बनाया, वहीं इन खेलों को किशोरों के खेल, वयस्कों के खेल, वृद्धों के खेल और किशोर तथा जवानों के उभय वर्ग द्वारा खेले जाने वाले सभी खेलों पर अपनी कलम चलाई है। इन खेलों को बालक– बालिकाएँ, पुरुष– महिलाएँ, लड़के– लड़कियाँ अलग–अलग या सम्मिलित टीमें बनाकर खेलें, एक साथ खेलें अथवा अलग–अलग खेलें। खेलों के उपकरण कैसे–कैसे हों, हार– जीत का या हुर्रे किस तरह प्रकट हों, सभी का विशद् वर्णन किया है। इन खेलों की परम्पराओं में अंग्रेजी कब प्रविष्ट हुई, यह प्रश्न हम सभी को चौंकाता है। खेल शुरू होने पर'सावधान'की जगह 'रेडी' शब्द आया और खेल से एक प्राण हो गया। 'बाहर'या 'बरखास्त'जैसा परिणाम सूचक शब्द 'आऊट' के पेट में चला गया। जानबूझ कर की गई गलती को 'फाऊल'शब्द ने पचा लिया। 'सिंगल'

'डबल' जैसे शब्द हमारे खेलों में लोकमान्य हो गए, यह हम देख ही रहे हैं। अँग्रेजों और अँग्रेजी के आने की सीधी छाप हमारी इस आँचलिक सम्पदा पर भी पड़ी। हमने उस शब्द सम्पदा को स्वीकार भी कर लिया। अब हम इन शब्दों को देश निकाला भी नहीं दे सकते। वह हमारी लाचारी या विवशता नहीं, अपितु पाचन शक्ति का प्रमाण है। हम और हमारे खेल इस बदलाव को सहज स्वीकार करते हैं। विकृति मानकर अपना मुँह नहीं बिगाड़ते। लोक जीवन की यही विशेषता है। जो अपनाने लायक होता है उसे अपना लेता है, जो अपनाने जैसा नहीं होता, उसे नमस्कार करने में संकोच नहीं करता।

इन खेलों को आप अपने आसपास रोज देखते हैं। आपके अपने बच्चे और परिजन इन्हें खेलते हैं और आप एक दर्शक के रूप में उसके भागीदार होते हैं। कई खेलों में और एक दर्शक के रूप में उसके भागीदार होते हैं। कई खेलों में आप खुद अपने साथी खिलाड़ी के भीडू बने होंगे, आज भी बनते हैं। 'ताश'के खेल इसका उदाहरण है। अपनी दिनचर्या का कुछ न कुछ समय आप आज भी किसी न किसी खेल के हिस्सेदार या खिलाड़ी बनकर बिताते ही है।

भाई श्री बंशीधर बंधु ने सचमुच 'लेखकीय लोक परिश्रम किया है।' वे बधाई और धन्यवाद के पात्र हैं। जैसे–जैसे विज्ञान विकसित हो रहा है, हमारे और हमारे बच्चों के हाथों में नित्य नये खेल उपकरण आ रहे हैं। हमारे खेल और खिलौने सब बदलते जा रहे हैं। ऐसे में इस पुस्तक का हमारे सामने आना, एक बहुत महत्त्वपूर्ण 'खेल' नहीं, अपितु 'घटना' है।

मेरा विश्वास है कि विज्ञान और अन्तर्जाल (इन्टरनेट) की चपेट में आते जा रहे मालवा में यह पुस्तक कई आंचलिक खेलों को लुप्त होने से बचायेगी। लेखक और प्रकाशक दोनों बधाई के पात्र है।

–बाल कवि बैरागी

दो शब्द.....

खेल स्वाभाविक मनोरंजन है। शिशु अनजानी हरकत करते रहते हैं, जिसे हम खेल कहते हैं। समस्त प्राणी जगत के भी अपने स्वाभाविक खेल होते हैं। खेलों से मनोरंजन तो होता ही है, शारीरिक और मानसिक व्यायाम तथा विकास भी होता रहता है।

खेल धातु के अर्थ हिलना–डुलना, इधर–उधर आदि होते हैं। क्रीड़ा या केलि उसके लिए प्रसिद्ध पर्याय हैं। खेल स्वाभाविक होते हैं और कृत्रिम भी। शिशुओं की क्रीड़ा स्वाभाविक होती है, शेष कृत्रि। आमोद–प्रमोद, मनोरंजन, तमाशा, लीला, दिल–बहलाव, कौतुक, आखेट आदि सभी खेल के ही रूप है। ये नित्य, नैमित्तिक अव्यवसायिक–व्यवसायिक अथवा प्रायोजित प्रकार के होते हैं। रमण या रमना खेल वाचक एवं स्वाभाविक और व्यापक अर्थ भरा शब्द है। खेलने का साधन खिलौना या क्रीड़ानक होता है।

नगर और ग्रामों में सर्वत्र खेल होते हैं, और कुछ खेल गाँव में लोकप्रिय होते हैं, कुछ खेल नगरों में तथा कुछ खेल सर्वत्र उपलब्ध संसाधनों पर भी निर्भर होता है। मकर संक्रान्ति पर गाँव में गिल्ली–डंडे और नगरों में पतंगों का प्रचलन रहा। अब पतंगों की व्याप्ति होती जा रही है। पहले क्रिकेट संभ्रातों का खेल था, अब सर्वव्यापी हो गया है।

लोक व्यापक है। उसकी गतिविधियों और वाचिक परम्पराओं का दस्तावेजीकरण होते रहने से समाज की परम्पराओं और बदलाव का ज्ञान होता रहता है। मालवा के खेलों का लेखा–जोखा छुटपुट होता रहा। आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी भोपाल ने मध्यप्रदेश के खेल गीतों का संकलन पूर्व में प्रकाशित किया है। उसमें मालवा के खेल गीतों, कथाओं का मालवी–हिन्दी में संकलन किया गया है।

उस क्रम को आगे बढ़ाते हुए अब श्री बंशीधर बंधु ने 'आंचलिक खेल परम्पराएँ' पुस्तक द्वारा खेल के व्यवहारिक पक्ष को प्रकट करके न केवल उस धारा को आगे बढ़ाया, अपितु उसे व्यापक भी कर दिया। बड़ों के खेल,नारियों के खेल,मैदानी खेल, घरेलू खेल आदि कई रूप हो सकते हैं। खेल असीम होते हैं।

घट्टी पीसने के गीत,विवाह के समय नारियों द्वारा विवाह का स्वांग 'टूँट्यो सिंगारनो'जमरा निकालना सहित कितने ही अन्यान्य रूप हो सकते हैं। आशा है उनके भी आकलन की और प्रवृत्ति होगी। प्रस्तुत पुस्तक मालवी लोक परम्परा के आकलन कि दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। आशा है लेखक की साधना सफल होगी।

–डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित

पूर्वरंग..

जब से मनुष्य ने इस धरती पर आँख खोली है, वह अपने रंजन के लिए क्रीड़ा सहित विविध माध्यमों का आश्रय लेता आ रहा है। मनुष्येतर जगत् में भी क्रीड़ा के सहज रूप देखने में आते हैं। वानर, हाथी, चिड़िया, मयूर, तोते जैसे अनेकानेक पशु–पक्षियों के मध्य क्रीड़ाएँ उनके स्वाभाविक जीवन का हिस्सा दिखाई देती हैं। वे इन क्रीड़ाओं से स्वयं के कौशल को विकसित करते हैं, उन्हें आंतरिक आनंद की भी प्राप्ति होती है। मनुष्य ने भी किसी सुदूर अतीत में इस तरह खुद को विविध क्रीड़ाओं से जोड़ा होगा। कहा जाता है, जब यह ब्रह्माण्ड नहीं था, तब परमात्मा को भी अकेलेपन से ऊब होने लगी और उसने स्वयं को एक से अनेक में विभक्त कर लिया। तभी से उसकी लीला चलने लगी। हमारे शास्त्रों में लीला का प्रयोजन और कुछ नहीं, लीला ही माना गया है। जब परमात्मा को रमण के लिए क्रीड़ा की आवश्यकता हो सकती है,तो मनुष्य की प्रवृत्ति इसकी ओर सहज ही थी।

क्रीड़ा सहित लोकरंजन के विविध माध्यम लोकमन के उल्लास एवं उत्फुल्लता की समूहात्मक अभिव्यक्ति हैं। युग और रूचि के अनुरूप इनमें बदलाव आते रहे हैं, लेकिन इनकी दबावमुक्त जरूरत बराबर बनी रही है। वैसे तो लोकरंजन के माध्यम शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों रूपों में विभक्त किए जा सकते हैं। इनमें से क्रीड़ा या खेलकूद को पहले वर्ग में रखा जाता है, लेकिन सूक्ष्मता से विचार करें तो 'क्रीड़ा' शरीर से लेकर आत्मा तक की चहल कदमी को अनायास मूर्त करने की क्रिया है। इस जगत् को परमात्मा की क्रीड़ा या लीलाविलास कहने के पीछे भारतीय चिन्तकों का यही आशय रहा है। खेलकूद साधन भी हैं और साध्य भी। पुराकाल से आदि शरीर और मन के स्वास्थ के लिए खेलों को विशेष महत्त्व मिला है, तो वह आकस्मिक नहीं है।

खेल केवल मनोविनोद के साधन नहीं है, अपितु अन्य उद्देश्यों के साथ ये समाज के विभिन्न वर्गों को जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आज कई खेल व्यवसाय के फलक तक स्थापित तथ्य बन गए हैं, जिनमें अरबों रुपये का विनिवेश लगा हुआ है। इसकी शुरूआत उस समय से हुई होगी, जब मनोविनोद के साधन से चलकर विभिन्न खेल, स्पर्धाओं के माध्यम बन गए। कई खेल भले ही स्पर्धा के दायरे में चले गए हों, किन्तु यह तय बात है, सभी खेल मनुष्य के मन और बुद्धि को रँगते है, वहीं उसकी प्रतिभा और कल्पना के विस्तार के साथ ही पराक्रम और शौर्य के लिए ठोस जमीन देते आ रहे हैं । बिना अन्तर्क्रिया और संवाद के क्रीड़ा संभव नहीं है। इसलिए आपस में जोड़ना,परस्पर प्रेम और सद्भावना के आनंदप्रद साम्राज्य में ले जाना खेलों का स्थायी चरित्र है। उनका अपना लोकतंत्र है,जिसमें आपसी भेदभाव और व्यक्तिवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। खेलों में डूबा मनुष्य कुल, वर्ग, नस्ल, देश, क्षेत्र–जैसे तमाम बंधनों से मुक्ति का विलक्षण अनुभव पाता है।

प्राचीन भारत में चर्चित विभिन्न कलारूपों के बीच कई क्रीड़ा रूपों को भी स्थान मिला था। भले ही हम आज कला और क्रीड़ा को अलग–अलग दायरों में रखते हैं, किसी समय ये दोनों 'कला' या 'शिल्प' के क्षेत्र में ही परिगणित किए जाते थे। आखिर ऐसा क्यों नहीं होता, सभी में तो प्रतिभा, कौशल और कलाबाजी की आवश्यकता होती है और ये सभी स्वभाव आनंददायी होते हैं। महाभारत में युधिष्ठिर की दासियों को सभी कलारूपों में दक्ष बताया गया है, जिनमें से कई ऐसे हैं जो आज खेलों के दायरे में आ गए हैं। वात्स्यायन कृत कामसूत्र, शुक्रनीतिसार, ललितविस्तर आदि कई ग्रंथों में वर्णित चौसठ कलाओं में कई कलाएँ ऐसी हैं, जिन्हें हम या तो मनोरंजक खेल कह सकते हैं या शारीरिक व्यायामपरक क्रीड़ाएँ। ऐसे तमाम खेल एवं क्रीड़ाओं का विस्तार विभिन्न अंचलों में शताब्दी–दर–शताब्दी होता चला आया है। विभिन्न ग्रंथों में वर्णित कला–प्रकार में कुछ कलाएँ निम्नानुसार हैं, जिन्हें हम आज खेल का हिस्सा मान सकते हैं। तैरना या जल क्रीड़ा (तरणम्), अन्त्याक्षरी, समस्यापूर्ति भेड़ा–मुर्गा और तीतर–बटेर को लड़ाना, उँगलियों के इशारे से बातचीत करना, गुप्त लिखावट के प्रयोग, स्मरण शक्ति बढ़ाने की कला, जुआ खेलना, शतरंज, चौपड़ आदि खेलना, गुड़ियों और खिलौनों से खेलना, कसरत एवं कई प्रकार के खेल, कूदना (लंघितम्) उछलना (प्राक्चलितम्), दौड़ना (जवितम्), पानी में डुबकी लगाना (प्लवितम्), तीर चलाना, मुट्ठी और घूँसे की कला,नाव खेना,उछालने का कौशल आदि–आदि। विविध कला सूचियों में चर्चित कई कला या खेल आज भी किसी न किसी रूप में प्रचलन में हैं। कुछ मूल रूप में वैसे ही हैं, कुछ परिवर्तित या विस्तृत होकर नये रूपाकार ग्रहण कर चुके हैं। कहने का आशय है कि सदियों से हमारी खेल

परम्पराओं, उनके वैशिष्ट्य और प्रासंगिकता–सभी का सातत्य हुआ है। यही बात हम विभिन्न खेलों की महिमा को लेकर कह सकते हैं। संस्कृत साहित्य में कन्दुक या गेंद की क्रीड़ा को लेकर जो लाभ दिखाए गए हैं। वे प्रायःसभी खेलों में देखे जा सकते हैं–

बुद्धेर्विकासो मनसो विनोदःस्वास्थ्यं शरीरे नवचेतना च।
सौहार्दलाभोऽपि च देशभक्तिःसञ्जायेत कन्दुकखेलनेन॥

आर्थात् कन्दुक के खेल से बुद्धि का विकास,मनोविनोद, शारीरिक स्वास्थ, नयी चेतना, सौहार्द्र–लाभ तथा देशभक्ति–ये सारे लाभ एक साथ प्राप्त हो जाते हैं। इस टिप्पणी से स्पष्ट है कि खेलों से समग्र विकास संभव है। वे व्यष्टि और समष्टि जीवन के लिए उपादेय हैं। वेद, जिन्हें अपौरूषेय माना जाता है, कुछ उपवेद भी क्रीड़ा एवं कला से सम्बन्ध रखते हैं। यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद का सामान्य क्रीड़ा से लेकर सैन्य व्यवस्था तक सब कुछ समाहित कर लेता है। इसी प्रकार सामवेद उपवेद 'गांधर्ववेद' नृत्य, गीत और संगीत के समष्टिगत अभिधान 'संगीत'का विवेचन है, जो जनरंजन का सशक्त माध्यम है।

हमारी लोक परम्परा में भी खेलों की विशिष्ट महिमा रही है। न जाने किस सुदूर अतीत से लोक और शास्त्र के बीच चली आ रही आपसदारी में खेलों ने भी अपना अद्वितीय योगदान दिया है। हमारे अनेकानेक खेल कृषि एवं पशुचारण की सभ्यता से जुड़े रहे हैं। उनका हमारे भूगोल एवं पर्यावरण से गहरा रिश्ता है। विकास एवं नगरीकरण की अंधी दौड़ में खेल और खेल के मैदान सिकुड़ रहे हैं, ऐसे में अपनी आंचलिक खेल परम्पराओं पर चिंतन के साथ ही उनकी सार्थकता एवं प्रासंगिकता की पड़ताल निश्चय ही रोचक और प्रेरणास्पद हो सकती है। इस दिशा में मालवा के सुधी रचनाकार एवं लोक संस्कृति कर्मी श्री बंशीधर 'बंधु'ने अद्भुत पहल की है, जो की मालवी खेल पुस्तक के रूप में हमारे सामने है। लगभग सवा सौ खेलों को समेटती यह पुस्तक अपने ढंग से 'मील का पत्थर' गढ़ती और रचती है। इन खेलों में हर आयु वर्ग के खेल हैं–शिशु अवस्था के खेल, किशोर के खेल, किशोरियों के खेल, उभयवर्गीय खेल, वयस्कों के खेल और बुजुर्गों के खेल। लेखक ने इस पुस्तक के माध्यम से खेलों के लोक और लोक खेलों की दुनिया को बड़े परिश्रम और कौशल के साथ साकार किया है। यह पुस्तक अपने ढंग का अनूठा प्रयास है। यदि देश के अन्यान्य अंचलों की खेल परम्पराओं पर इसी तरह की सामग्री जुटाकर पुस्तकाकार प्रकाशन हो सके, तो संभव है हम विलुप्ति के कगार पर जाते कई खेलों से पुनःजुड़ सकेंगे, वहीं लोक क्रीड़ाओं की देश–देशान्तर यात्रा का भी आनंद ले सकेंगे।

श्री बंधु (1964) पिछले लगभग तीन दशकों से मालवी कविताधारा को समृद्ध कर रहे हैं। उन्होंने गीत–ग़ज़ल के साथ ही मुक्त छंद और हायकू के माध्यम से लोकमत की विविधायामी अभिव्यक्ति की है। श्री बंधु के अब तक तीन संग्रह प्रकाशित हो चुके है –अलाव (1986) हिवड़ो हेला पाड़े (2003) और पपइयो बोली बोले (2008)। श्री बंधु ने मालवा के शहर कस्बों ग्राम–खेड़ों, घर–आँगन, चौराहे–चौपाल, सर्वत्र व्याप्त लोक–संस्कृति एवं लोकरंजन के विविध माध्यमों का जैविक साक्षात्कार किया है। वे इनमें आ रहे बदलावों से भी अपरिचित नहीं हैं। इस दृष्टि से इनकी पुस्तक को एक अद्वितीय उपलब्धि कहा जा सकता है। इस पुस्तक में वर्णित कुछ खेल अब धीरे–धीरे विलुप्ति के कगार पर हैं। किंतु नई पीढ़ी के शारीरिक एवं मानसिक विकास में उनकी महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

इस पुस्तक में वर्णित प्रायः अधिकांश खेल अत्यंत सीमित साधनों में खेले जा सकते हैं। यदि कुछ खेलों में साधनों की आवश्यकता होती भी है, तो वे आसपास के परिवेश में सहज ही सुलभ हो सकते हैं या थोड़े प्रयासों से उन्हें तैयार किया जा सकता है। इसमें वर्णित कई खेलों को मैंने स्वयं अपने लड़कपन में खेला और आनंद लिया है, उन्हें संचित रूप में पाना मेरे लिए प्रीतिकर अनुभव बन पड़ा है। इसके लिए श्री बंधु जी की जितनी प्रशंसा की जाए, कम होगा। पुस्तक में वर्णित खेलों में पकड़म पाटी, एक सो प्रेस, आँख मिचोली, बैठक चाँदी, छीपमछई, आदि खेलों में किसी सहायक सामग्री की आवश्यकता नहीं होती है और प्रायः ये सभी खेल थोड़े से नाम परिवर्तन के साथ देश के अधिकांश अंचलों में खेले जाते हैं। कुछ खेल नाट्याभिनय मूलक हैं, जिनमें बच्चों की अनुकरण वृत्ति का परिचय मिलता है। ऐसे खेलों में राजा–मंत्री–चोर–सिपाही, चोर पकड़, कोड़ा मार, रोटा भाजी,घर–घर, चोर पुलिस,मूर्ति, डोकरी आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ खेल मध्ययुगीन सामंती व्यवस्था के बीच उपजे हैं, तो कुछ ब्रिटिश औपनिवेशिक दौर में। पश्चिम से सम्पर्क के बाद लोकप्रिय हुए खेल रूपों में हम चोर पुलिस, डेस–कोश–सिंगल–बुलबुल–मास्टर, स्टेच्यु या स्टाप आदि को रख सकते हैं। इसमें वर्णित कुछ खेलों के संदर्भ तो महाभारत काल में भी मिलते हैं, जैसे चौपड़ जिसने महाभारत युद्ध की पीठिका तैयार की थी। इसी चौपड़ का लघुरूप मालवाँचल में प्रचलित हैं, जिनमें विशिष्ट ज्यामितीय संरचना या पाँसों की आवश्यकता होती है। ऐसे खेलों में सोलह सार चंग पौ (चंग अष्ट), नाहर–बकरी (डमरू), तीन बनिया आदि को रख सकते हैं। चंग पौ के पाँसे तो बेहद आसानी से बन जाते हैं। इमली के दो बीज (चीएँ) लिए इन्हें बीच से दो फाड़ कर चार दालें बनाई बस पाँसा(दाल) तैयार है। वर्तमान लूडो में तो हमें एक बिन्दुदार घन(क्यूब)की जरूरत होती है, किंतु देशी पाँसे तो बहुत सरल ढंग से तैयार हो जाते हैं।

कबड्डी एवं खो–खो जैसे खेलों का भी इस पुस्तक में समावेश है, जो या तो मूल रूप में अन्तर्राष्ट्रीय खेलों में शामिल हो गए हैं या थोड़े बहुत परिर्वतन के साथ वैश्विक हो चले हैं। वर्तमान में सर्वाधिक लोकप्रिय खेल क्रिकेट के पूर्व रूप गिल्ली डंडे का परिचय भी इस पुस्तक में है। कन्दुक या गेंद की क्रीड़ाएँ भारतीय सभ्यता में अनेक शताब्दियों से प्रचलित हैं, जिसका उल्लेख एवं रूपांकन स्थान–स्थान पर मिलता है। इसी कड़ी के अनेक खेलों का समावेश इस पुस्तक में है, जैसे सितोलिया, गदामार आदि। कुछ खेल पशुचारण करने वाले किशोरों ने गढ़े हैं, जैसे कुलाम डाल, अत्ती–पत्ती आदि। इन खेलों में जहाँ प्रकृति का आनंददायी संसर्ग है, वहीं खेल के बहाने प्रकृति के अध्ययन की पारम्परिक पद्धति भी दिखाई देती है। काँच से बने कंचे या गोली (अंटी) के कई खेल भी इसमें वर्णित हैं, जो एक दौर में बहुत लोकप्रिय थे। किराने की दुकानों पर एक जार में रखे बहुरंगी कंचे किशोरों को बहुत लुभाते थे। कंचे के खेलों में फलांग, कोणीघीस, राज–रानी, गुच्ची, अंटी, अंटी कुलांडिया, भोपाल जल्ला आदि की विधि इस पुस्तक में समाहित है। कुश्ती, करतब, रस्सी कूद जैसे व्यायामपरक खेलों का भी लेखक ने यहाँ वर्णन किया है। जहाँ आवश्यक हुआ है, लेखक ने चित्र एवं आकृतियों से खेलों के परिचय को पूर्णता दी है।

वस्तुतःमालवी खेल और परम्पराए कई सदियों से शैशव से लेकर वृद्धावस्था तक सभी लोगों के रंजन के साथ ही समग्र विकास का कार्य करती आ रही हैं । लेखक ने इस पुस्तक के जरिये उन खेलों से पुनःजुड़ने का अह्वान किया,जो कथित विकास की अंधी दौड़ में भुलाए–बिसराए जा रहे हैं। लोकमन का सहज राग और उल्लास इन खेलों में प्रकट होता है, इन्हें पुनर्स्थापित करने का श्री बंशीधर बंधु का यह प्रयास निश्चय ही आश्वस्तकारी है।

–प्रो. शैलेन्द्र कुमारशर्मा

आचार्य एवं कुलानुशासक
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
मो.98260-47765

अपनी बात....

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, इसी नियम के अन्तर्गत गतिमान है सृष्टि। इसीलिए प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से अनवरत कुछ न कुछ घटित होता रहता है। इस घटित होने से आता है नयापन, नयारूप, नयाफन और नया सृजन! इस नये के कारण ही अभी तक पृथ्वी की आयु का सही–सही पता नहीं लगा और आगे भी इसकी कितनी आयु होगी, इसकी भी कल्पना नहीं की जा सकती।

पृथ्वी असंख्य तत्त्वों,पदार्थों,वनस्पतियों तथा असंख्य प्राणधारियों से परिपूरित है। यदि हम इसे रहस्यमयी और अनूठी विचित्रताओं का अनुपम ग्रह भी कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। पृथ्वी के असंख्य प्राणधारियों में मानव सर्वोपरि और अतिश्रेष्ठ है। क्योंकि इस जीवधारी को सोचने–समझने के लिए विशेष संवेदी मस्तिष्क मिला है। साफ–साफ अभिव्यक्ति के लिए व्यवस्थित और व्यापक वाणी तथा अपार बौद्धिक क्षमता मिली है। इसीलिए मानव को स्रष्टा की असंख्या कृतियों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। परन्तु अन्य कृतियों की भाँति मानव भी प्रकृति के नियमों से बँधा है। इसे भी सांसारिक आवागमन की मूल प्रक्रिया का पालन करना होता है।

जन्म–मृत्यु के बीच के अन्तराल को आयु या जीवन काल कहा जाता है। इस जीवन काल में एक कालखण्ड, बहुत ही खुबसूरत और मधुर होता है और वह कालखण्ड होता है शिशु अवस्था से यौवनावस्था के बीच का जिसे शिशुकाल, बाल्यकाल, किशोरकाल कहा जाता है। शिशु से किशोर तक के समग्र कालखण्ड को बाल्यकाल या बचपन कहा जाता है। यह कालखण्ड अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और मोहक होता है। मानव जीवन के इस कालखण्ड के भोग के लिए शायद स्रष्टा भी तरसता होगा।

जहाँ–जहाँ इस धरती पर प्राणधारी है वहाँ–वहाँ संस्कृतियाँ विद्यमान हैं। फिर चाहे थलचर, नभचर हो या जलचर, इनमें मानवी संस्कृति सर्वोपरि हैं। मानवों में अनेकानेक संस्कृतियाँ फली–फूली हैं। यदि समझा और जाना जाये तो मानव की इन अनेक संस्कृतियों में से एक है–क्रीड़ा(खेल) परम्परा। जिसे जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक वह अपनाता रहता है। संसार में यूँ तो असंख्य खेल है। परन्तु इस पुस्तक को एक विशेष भूखण्ड 'मालवांचल' की खेल परम्परा पर केन्द्रित किया गया है। मालवा भारत भूमि के मध्य में बसे मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग का भूखण्ड है, जहाँ अनेक जातिधर्म के लोग निवास करते हैं।

मालवांचल में प्रचलित खेलों में से कुछ खेल अपने आप समय के साथ चलते–चलते

लड़खड़ा कर अपना अस्तित्व खो गये और कुछ अपने मूल रूप से निखार पाकर विद्यमान हैं, कुछ अपने आकर्षण के कारण नियमों में बंधकर थोड़ा परिवर्तन लेकर राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति पा गये और अमर हो गये। उदाहरणार्थ 'कबड्डी' जो 'ची'का बदला रूप है, सितोलिया, पत्थर छू और दड़ी (गेंद) का मिला–जुला रूप है 'क्रिकेट'। गदामार का निखरा रूप है फुटबाल, हॉकी और व्हालीबाल, टेनिस, बेडमिंटन आदि। बाकी के खेल आंचलिक होकर विद्यमान हैं।

अपसंस्कृति और इस यांत्रिकीय दौर में हमारी सु–संस्कारित, सु–सभ्य, शालीन भारतीय संस्कृति हाशिए पर पहुँच रही है। ऐसे में आंचलिक खेल (जिनमें हमारी खेल संस्कृति विद्यमान है) अछूती नहीं बची। विचार आया कि हमारी भारतीय संस्कृति में कहीं न कहीं परम्परागत खेल भी शामिल हैं। इन्हें भी पृष्ठांकित किया जाना आवश्यक है। दृढ़ निश्चयी होकर मैंने इस पर कार्य प्रारम्भ किया।

दू–दराज गाँवों में जाकर लोगों और बच्चों से मिलकर खेलों के बारे में जाना समझा और लिपिबद्ध किया। आश्चर्य तो तब हुआ, जब इन आंचलिक खेलों की संख्या लगभग एक सौ पच्चीस हो गयी। इतने सारे खेल। जो बिना किसी खर्चीली सामग्री, साधन के प्रचलित हैं। इस पर भी मैं मानता हूँ कि मेरी नजर से और भी खेल बचे होंगे, जिन्हें लिपिबद्ध नहीं किया जा सका हो।

इस कार्य की पूर्णता में साहित्य मनीषी श्री झलक निगम जी श्रद्धेय श्री बालकवि बैरागी,संस्कृतिविद् डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित जी, साहित्य मनीषी डॉ पूरन सहगल जी, डॉ.शिव चौरसिया जी, विद्वान हिन्दी विभागाध्यक्ष माधव महाविद्यालय उज्जैन डॉ.शैलेन्द्र कुमार शर्मा जी, लोकभाषा मालवी के गीतकार श्री मोहनसोनी जी आदि विद्वानों के परामर्श और प्रेरणा ने मुझे आत्मबल दिया। आप सभी का मैं हृदय से आभारी हूँ।

आदरणीया जेड.श्वेतिमा निगम जी जिन्होनें पांडुलिपि तैयार करने में अथक परिश्रम किया मैं उनके प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ। डॉ.श्रीकृष्ण जोशी जी का चित्रों से पुस्तक को आशीर्वाद देने के लिए बहुत आभारी हूँ। डॉ.दुबे का भी रेखांकन के लिए आभार मानता हूँ।

बेटी अंजली और पारूल 'सहज' जिनकी नन्हीं कलम से कुछ रेखाचित्र मुझे मिल पाये हैं। मैं आदरणीय रामप्रसाद सहज,श्री खेमराज विश्वकर्मा जी का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने खेल खेलते बच्चों की तस्वीरे उपलब्ध करवायी। आप सभी का सहयोग यदि मुझे नहीं मिलता तो यह कार्य नहीं हो पाता। इस कार्य में मैं कितना सफल हो पाया हूँ, यह तो आपकी प्रतिक्रियाएँ ही बतायेगी।

– बंशीधर बंधु

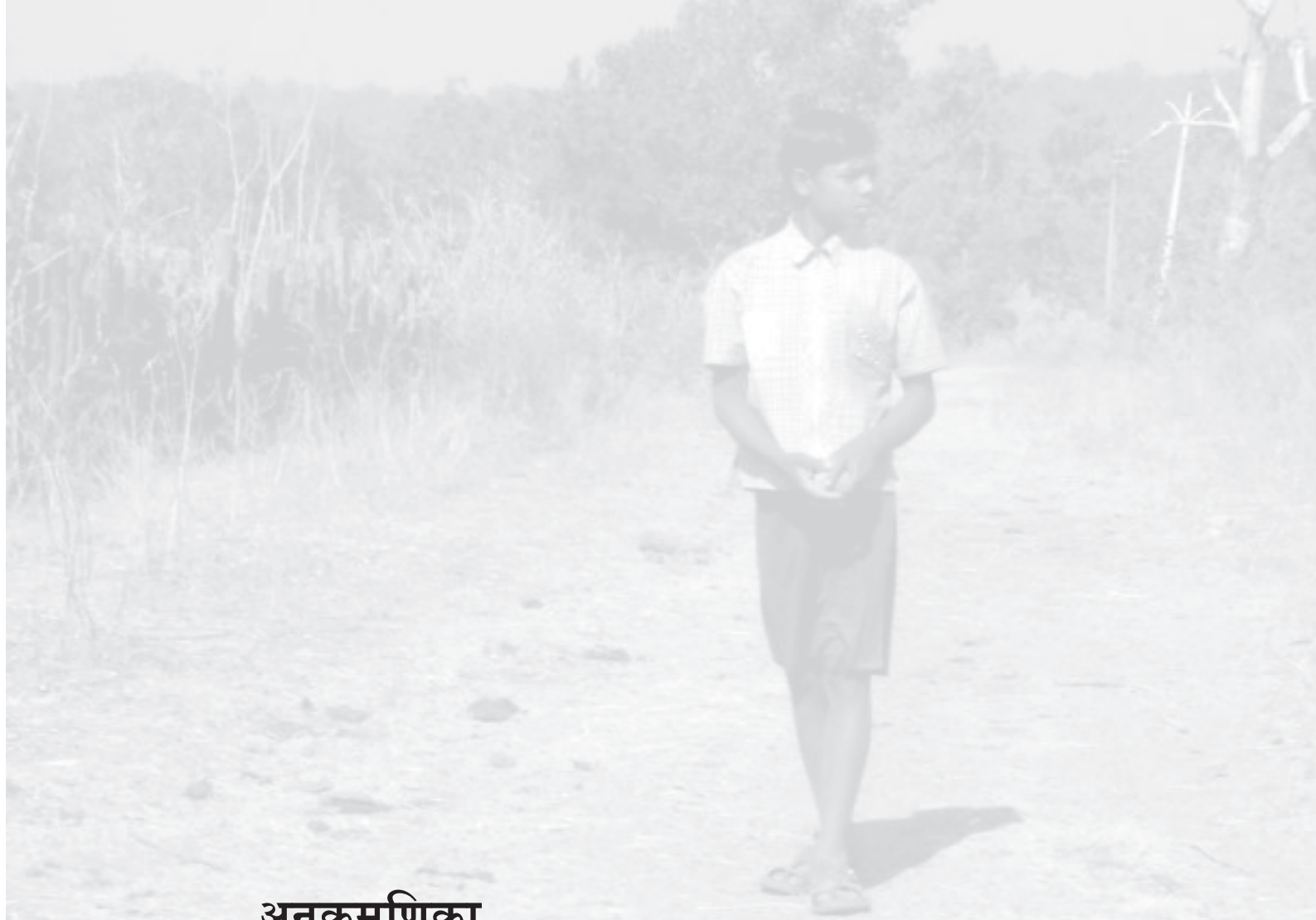

अनुक्रमणिका

मालवी खेल	–	23
शैशव और उसके खेल	–	25
किशोर और उसके खेल	–	28
वयस्कों के खेल	–	89
वृद्धों के खेल	–	101
मालवी के खेलगीत	–	105

मालवी खेल

यदि कहा जाये कि यह दुनिया एक रंगमंच है और हम इस रंगमंच के पात्र तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि हम एक अभिनेता की तरह इस रंगमंच पर आते हैं और अपने हिस्से का अभिनय(खेल) कर चले जाते हैं। प्रकृति स्वयं भी खेल पसन्द करती है। आँधी, तूफान, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, ओलावृष्टि, भूकम्प, बादल फटना, बाढ़ आना, सूखा पड़ना आदि विनाशक खेल तथा प्राणियों का जन्मना, पेड़–पौधों का उगना, फल–फूलों का लदना, फसलों का होना, हवा का बहना, सूर्य–चन्द्र का निकलना, डूबना, ऋतुओं का बदलना आदि सृजनात्मक खेल प्रकृति के खेलों के हिस्से हैं।

जब प्रकृति स्वयं खेल खेलती है तो फिर यहाँ प्राणी कैसे वंचित रह सकते हैं। संसार के प्रत्येक जीवधारी के जीवन की अनिवार्यता है खेल। फिर चाहे वह पशु हो, पक्षी हो या फिर मानव। कीरी से कुंजर तक का जीवन बिना खेल के पूर्णता नहीं पा सकता। वनस्पति जगत भी हवा के साथ अठखेलियाँ खेलता सहज ही नजर आता है।

प्राणी जगत खेलों से ही मानसिक, शारीरिक और बौद्धिक विकास करता है और वनस्पति जगत हरियालीमय जीवन पाता है। मानव इस संसार के समस्त प्राणधारियों में श्रेष्ठ है। अन्य प्राणधारियों की अपेक्षा मानव में कई गुना अधिक क्षमताएँ और शारीरिक व बौद्धिक शक्तियाँ निहित हैं। उसकी आयु का आधे से अधिक समय हँसी–ठिठोली और खेलों में व्यतीत होता है। जो सोचता है उसे कर लेने की उसमें अपार क्षमता होती है। मानव अपने सर्वांगीण विकास, इच्छाओं व आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सतत् प्रयासरत रहता है। अपने चहुँमुखी विकास में खेलों को शामिल कर रखा है। इसलिए वह नये–नये खेलों को विकसित करता रहता है। अगर यह कहा जाये कि मानव में खेल प्रवृत्ति उसके जन्म के साथ ही जन्म ले लेती है तो कोई अतिशयोक्ति

नहीं होगी। जैसे ही बच्चे का जन्म होता है, वह कुछ ही समय बाद अपने हाथ–पैर हिलाना चहकना–चिल्लाना प्रारम्भ कर देता है। जैसे–जैसे वह शारीरिक विकास करता है, उसमें खेल प्रवृत्तियाँ बढ़ती जाती हैं।

छत पर नजरे तैराना, दीवारों पर नजरे जमाना, ध्वनियों पर ध्यान जमाना, खिलौनों को देखना और मुस्कराना आदि समझ के सहारे ही उसकी खेल प्रवृत्तियाँ आकार लेने लगती हैं और आयु बढ़ने के साथ ही वह खेलों को अंगीकृत करने लगता है।

अतः कहा जा सकता है कि 'खेल' वास्तव में चित्त की उमंग, मन बहलाव, अभिनय या व्यायाम के लिए किया जाने वाला मानसिक व शारीरिक सामान्य श्रम है।

शैशव और उसके खेल

शैशवावस्था वास्तव में माँ के गर्भ से ही मानी जाती है। सच तो यह है कि शिशु के जन्म के साथ ही उसकी खेल प्रवृत्तियों का भी जन्म होता है। जैसे हाथ–पैर हिलाना, सिर इधर–उधर घुमाना, ओंठ पट–पटाना, मुट्ठी बाँधना–खोलना आदि सामान्य सी दिखने वाली क्रियाएँ ही उसकी महत्त्वपूर्ण खेल प्रक्रियाएँ होती हैं।

जैसे–जैसे शिशु अपनी आयु की सीढ़ियों पर आरोहण करता है, वैसे–वैसे ही उसकी खेल प्रक्रियाओं में भी परिवर्तन होता जाता है। शिशु की आयु और उसकी प्राथमिक प्रतिवर्ती खेल प्रक्रियाओं के आधार पर शैशव अवस्था को दो भागों में बाँटा जा सकता है –

पूर्व शैशव अवस्था

यह अवस्था शिशु के जन्म से तीन वर्ष तक की होती है। इस तीन वर्ष की अवधि को महिनों में बाँटा जा सकता है।

शून्य से लेकर पाँच माह तक की आयु में शिशु लगातार हाथ–पैर हिलाने के साथ ही, मुट्ठी बाँधना–खोलना, नींद में सिसकियाँ लेना, मुँह पिलकाना, आँखों की पुतलियों को इधर–उधर घुमाना, छत व दीवारों पर नजरे तैराना, अपने ही हाथों की तरफ देखना, हाथों की अंगुलियों को चूसना, हाथों को मुँह में लेना, हथेलियों को जोड़ना–छोड़ना, पैरों के पंजों को मुँह में लेना तथा अकेले या उत्प्रेरकों के साथ किलकना उसकी प्राथमिक प्रतिवर्ती खेल प्रक्रियाएँ होती हैं।

लगभग छः माह से नौ माह की आयु तक शिशुओं की खेल प्रक्रिया में बदलाव होता है। इस अवस्था में शिशु बैठने लगता है और पेट के बल घिसट–घिसट कर चलना सीख रहा होता है। इस अवस्था में उसकी प्रतिक्रियाओं में शामिल होता है– वस्तुओं को मुँह में लेना, घर की छोटी–छोटी चीजों से खेलना, खिलौनों से खेलना, मिट्टी मुँह में रखना।

दस माह से लेकर अठारह माह की आयु में शिशु की खेल प्रक्रियाओं में पुनः परिवर्तन दिखाई देता है। इस अवस्था में वह धूल में खेलना, घर के बर्तनों को उलटना–पलटना, बर्तनों में रखे पानी को ढोलकर उसमें खेलना, दीवार या भारी वस्तुओं के सहारे खड़े होकर किलकना मुख्य होता है।

उन्नीस माह से छब्बीस माह की अवधि में वह बिना सहारे चलना सीख लेता है। इस अवस्था में वह वस्तुओं के साथ खेलना, इधर–उधर रेंगकर वस्तुओं की उठा–पटक करना, उत्प्रेरक के साथ चलना–फिरना, खिलौनों की तरफ लपकना, उन्हें तोड़ना आदि करने लगता है। यही प्रक्रियाएँ उसकी खेल प्रक्रियाएँ होती हैं।

सत्ताईस माह से तीन वर्ष तक की आयु में शिशु अपनी खेल प्रक्रियाओं में हल्का सा परिवर्तन कर खेलता है। जैसे वस्तुओं को तोड़ना–जोड़ना, वस्तुओं को बिखेरना, वस्तुओं को धकेलना, वस्तुओं पर चढ़ना–उतरना, खोखली वस्तुओं में घुसना–निकलना आदि है।

चार से छः वर्ष की आयु में शिशु थोड़ी भारी वस्तुओं को इधर–उधर उठा–पटक कर वस्तुओं को तोड़–जोड़ कर खेलते रहना बेहद पसन्द करता है। इसके साथ ही धूल में खेलना, पानी में हाथ–पैर डुबाना, पानी उछालना, घरेलू पशुओं के बच्चों के साथ खेलना, आँगन में चुगती चिड़ियों को उड़ाना, दाने कुटकती गिलहरियों के पीछे दौड़ना आदि खेल प्रक्रियाओं को करता है।

उत्तर शैशव अवस्था

उत्तर शैशव अवस्था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। इस अवस्था में शिशु का खेलों के साथ मानसिक विकास भी होता है। इस अवधि को शिशु का प्राथमिक सृजन काल कह सकते हैं। इस काल में शिशु सामाजिक सांस्कृतिक, शारीरिक और मानसिक विकास की ओर उन्मुख होने लगता है। परन्तु ये प्राथमिक प्रतिवर्ती प्रतिक्रियाएँ होती हैं।

शिशु का यह उत्तर शैशव काल सात वर्ष से लगभग नौ वर्ष तक का काल होता है। इस काल में शिशु की खेल प्रक्रियाओं में धूल में वस्तुओं व हल्के पत्थरों को घीसना, अंटियों–कंकड़ों–

खाली पैकेटों से खेलना, आँगन में दौड़ना, ऊँची जगहों पर चढ़ना–उतरना, छोटी–छोटी वस्तुओं को धागे– सुतली आदि से बाँधकर खींचना, रखी हुई चीजों पर चढ़ना–उतरना, धूल से घर बनाना–बिगाड़ना, छड़ी लेकर उत्प्रेरकों की तरफ दौड़ना आदि शामिल होता है।

किशोर और उसके खेल

किशोर अवस्था का यह काल दस वर्ष से सत्रह वर्ष तक का काल होता है। इस काल में किशोर समूह में रहकर खेलना पसन्द करता है। किशोर–किशोरियों द्वारा खेले जाने वाले खेलों के अध्ययन के आधार पर देखा गया है कि सर्वाधिक खेल इसी अवस्था में खेले जाते हैं। इस अवस्था में खेले जाने वाले खेलों को हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं।

किशोरों के खेल

किशोर अवस्था,शिशु अवस्था के बाद आती है, इस अवस्था में वह अच्छे–बुरे का भेद अच्छी तरह समझने लगता है। उसकी समझ पकने लगती है। आत्म सम्मान, आत्मग्लानि, संवेदना, ललक और जिज्ञासाएँ जैसी वृत्तियाँ फलने –फूलने लगती हैं। परन्तु उसका रूझान सिर्फ खेलों की तरफ ही अधिक होता है।

गिल्ली– डंडा

गिल्ली काष्ठ (लकड़ी) का ठोस गोल तीन से पाँच इंच लगभग का टुकड़ा जिसके दोनों मुहाने नुकीले होते हैं। डंडा–यह भी ठोस काष्ठ का लगभग दो या तीन फीट लम्बा लकड़ी का गोल टुकड़ा होता है, जिसका एक मुहाना छिला होता है।

गिल्ली व डंडे से खेले जाने वाले इस खेल को गिल्ली–डंडा कहा जाता है। यह खुले मैदान में खेला जाता है। स्थानाभाव के कारण इसे दबे–दबे गलियों, सँकरी जगहों पर भी खेलते देखा जा सकता है।

गिल्ली डंडा का यह खेल मूलतः मकर संक्रान्ति का दिवस होता है। परन्तु मकर संक्रान्ति के आगे–पीछे के दिवसों में भी इसे खेला जाता है।

गिल्ली डंडा तैयार कर एक स्थान निर्धारित कर जमीन पर लगभग एक इंच गहरा व चार–पाँच इंच लम्बाई की छोटी चूल बनाई जाती है, जिसे 'गुच्ची'कहा जाता है। यह तैयारी कर दो दल बनाये जाते हैं। दलों में बच्चों की संख्या निश्चित नहीं होती है, परन्तु दोनों दलों में बराबर संख्या रखी जाती है।

जो दल पहले खेलता है, उसका एक सदस्य गुच्ची के पास गिल्ली–डंडा लिए खड़ा होता है, बाकी के सदस्य एक ओर बैठे रहते हैं। दूसरे (वाम दल) दल के सभी सदस्य गुच्ची पर खड़े उस खिलाड़ी के सामने कुछ दूर सतर्क होकर खड़े हो जाते हैं। गुच्ची पर खड़ा खिलाड़ी गुच्ची पर

क्रास रूप में गिल्ली रख हाथ के डंडे का छिला हुआ मुहाना रखी हुई गिल्ली के नीचे रखकर डंडे को मजबूती से दोनों हाथों से पकड़कर 'रेडी' बोलकर गिल्ली को उछालता है। वाम पक्ष का कोई भी सदस्य उस गिल्ली को किसी तरह झेल लेता है तो गुच्ची पर खड़ा खिलाड़ी आउट हो जाता है, जिसे 'दाम गया' कहा जाता है।

यदि गिल्ली वामपक्ष नहीं झेल पाता है,तो गिल्ली जमीन पर गिर जाती है और जमीन

पर गिरी हुई गिल्ली को वामपक्ष का कोई भी खिलाड़ी जो अच्छा निशानेबाज हो– उठाकर वहीं खड़ा हो जाता है, जहाँ गिल्ली जमीन पर गिरी थी। गुच्ची पर खड़ा खिलाड़ी समकोण पर काटते हुए एक हाथ का डंडा रख देता है। वामदल का खिलाड़ी वहीं से डंडे पर गिल्ली का निशाना लगाता है। यदि निशाना डंडे पर सही लगा तो गुच्ची वाले खिलाड़ी का दाम चला जाता है। उसकी जगह उसके ही दल का दूसरा खिलाड़ी गुच्ची पर आ खड़ा होता है। यदि गिल्ली से वामदल के खिलाड़ी का निशाना नहीं लगता है तो फिर निशाना मारने के बाद जहाँ पर गिल्ली ठहरती है, वहीं पर गुच्ची वाला खिलाड़ी जाता है। और गिल्ली को डंडे से चोट कर ऊर्ध्व उचका कर सीधी चोट नहींलगती तो भी गुच्ची वाला खिलाड़ी आउट हो जाता है। तीन मौके से एक मौके पर भी यदि डंडे से सीधी जरा भी छू जाती है तो दाम बरकरार बना रहता है। परन्तु फिर यह देखा जाता है कि गिल्ली गुच्ची से कितनी दूर गयी है। यदि गुच्ची से उसके हाथ के डंडे की परिधि के भीतर ही गिल्ली है तो भी दाम चला जाता है। यदि गुच्ची से गिल्ली बहुत दूर गिरती है तो फिर गुच्चीवाला खिलाड़ी अनुमानित डंडे माँगता है। वामपक्ष यदि माँगे गये डंडे की संख्या की स्वीकृति दे देता है तो हार–जीत के लिए निर्धारित डंडे की संख्या की स्वीकृति नहीं देता है तो फिर हाथ से उसी डंडे से माप की जाती है। माँगा गया आँकड़ा सही होने पर जितने डंडे माँगे गये, उतने अपने खाते में जोड़ लिये जाते है , और खेल आगे बढ़ जाता है। यदि माँगे गये डंडे का आकड़ा पड़ी हुई गिल्ली तक मापने पर पूर्ण नहीं हुआ तो खिलाड़ी आउट हो जाता है।

हार–जीत का फैसला दोनों दलों के समस्त खिलाड़ियों के आउट होने पर ही होता है। किस दल के खाते में कितने डंडे की संख्या है। सर्वाधिक संख्या वाला दल जीत जाता है।

गुच्ची

इस खेल में कम से कम दो खिलाड़ी होते हैं। अधिक की संख्या निश्चित नहीं होती। यह काँच की गोलियाँ, सिक्के या अन्य किसी छोटी–छोटी वस्तुओं से भी खेला जाता है। इस खेल में सर्वप्रथम जगह निर्धारित कर जमीन में एक छोटा गोल गड्ढा बनाया जाता है। इस गड्ढे से कुछ दूर सुविधानुसार एक जगह किसी वस्तु को रखकर या पत्थर रखकर निशान बनाया जाता है। इसी निशान पर खड़े होकर हर एक खिलाड़ी जिस वस्तु से गुच्ची खेली जा रही हो उसको गुच्ची की तरफ फेंकता है। जिस खिलाड़ी की वस्तु (वस्तु या गोलियाँ) गुच्ची में पड़े वह मीर गुच्ची के पास जिसके वस्तु जितनी दूर हो उसी क्रम से दुल्ला, तिल्ला, चवल्ला, पचल्ला, छअल्ला नाम दिया जाता है। यह वास्तव में एक के बाद एक को खेलने का क्रम होता है।

खिलाड़ी द्वारा निशान से गुच्ची में फेंकने पर जितनी गोलियाँ या वस्तु गुच्ची में आ

जाये वह तो उसकी हो ही जाती है। फिर गुच्ची के बाहर पड़ी गोलियाँ या वस्तुओं में से दूसरे खिलाड़ी एक को चोट मारने को कहते हैं। यदि चोट सही लगी और दूसरी पास पड़ी गोलियों या वस्तुओं को बचा दिया गया है या यूँ कहें कि चोट से प्रभावित नहीं हुई तो समस्त गोलियाँ या वस्तुएँ चोट मारने वाले खिलाड़ी द्वारा जीत ली जाती हैं और यदि थोड़ी भी प्रभावित हो या 'कवा' (जिससे चोट की जाती है) गुच्ची में चला गया तो गुच्ची और गुच्ची के बाहर समस्त गोलियाँ या वस्तु अगले खिलाड़ी ले लेता है और दण्ड भी देना होता है। दण्ड में खिलाड़ी को अपनी ओर से एक गोली और मिलानी होती है।

फलांग

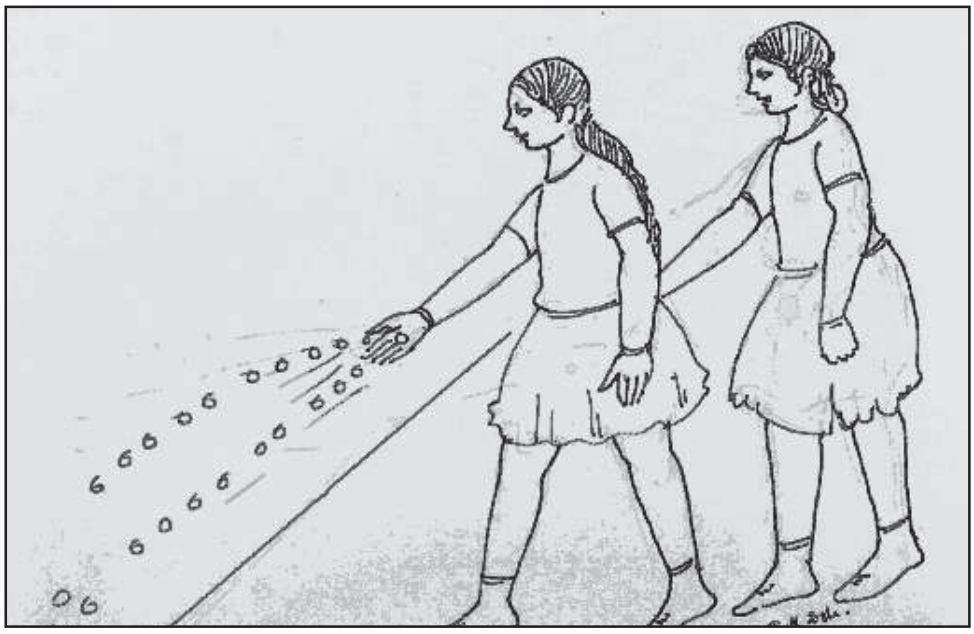

इस खेल में कोई प्रतिद्वंद्वी दल नहीं होता। न कोई मित्र न कोई दोस्त होता है। परन्तु खिलाड़ी एक से अधिक होते हैं। इस खेल में प्रत्येक खिलाड़ी के पास अपनी काँच की गोली (अंटी) होती है। सर्वप्रथम जमीन पर एक छोटा गोल गड्ढा बनाकर इससे दूरी पर निशान बनाया जाता है, जिसे 'डाल' कहा जाता है। फिर कितनी बार डालना है? यह सभी मिलकर निर्धारित करते हैं और खेल शुरू हो जाता है। एक–एक खिलाड़ी डाल पर खड़े होकर गोली (अंटी) गुच्ची में डालता है, जिसे चुगना कहते हैं। बारी–बारी से चुगने में जिस खिलाड़ी के द्वारा 100 बार अंटी गुच्ची में सबसे पहले हो गयी। वह अलग बैठ जाता है। फिर दूसरा यह लक्ष्य पार

कर गया तो वह भी अलग बैठ जाता है। इसी प्रकार सारे खिलाड़ी करते हैं। इसमें आखिरी के खिलाड़ी पर दाम आ जाता है। फिर यही खिलाड़ी गुच्ची से पाँवों के द्वारा तीन फलांग नापता है और वहीं अंटी रख देता है। इसके बाद बाकी खिलाड़ियों द्वारा एक–एक कर के गुच्ची से एक–एक फलांग मन चाही दिशा में नापते हैं और अपनी अंटियाँ फेंकते हैं। अपनी पड़ी हुई से एक–एक बालिस्त नाप कर उस आखिरी खिलाड़ी की पड़ी अंटी में चोट मारते हैं। यदि सभी खिलाड़ी सही चोट मारते गये तो खेल आगे चलता जाता है। जहाँ एक भी खिलाड़ी की चोट अंटी में नहीं लगी कि वहीं से वह दाम देने वाला खिलाड़ी गुच्ची तक एक पैर पर चलता है, जिसे लंगड़ी कहा जाता है।

कोणी घीस

यह खेल दो–दो के समूह में बँटकर या फिर एक–एक स्वतंत्र खेला जाता है। इसमें भी जमीन पर एक गुच्ची बनाई जाती है। इसी गुच्ची को केन्द्र रखा जाता है, जहाँ से खेल शुरू होता है।

पहले सभी खिलाड़ी बच्चे पक्के होते हैं। पक्का अर्थात् खिलाड़ी अंटी को मध्यमा अंगुली के ऊपरी सिरे में फँसाकर मारा करता है। जिसकी अंटी में चोट लग जाये, वह खिलाड़ी कच्चा हो जाता है। कच्चा अर्थात् हाथ की कोणी (कोहनी) से अंटी को छितरा–छितरा कर गुच्ची तक ले जाता है। जब उसकी अंटी गुच्ची में कोणी के द्वारा गोल कर देती है तो फिर वह कच्चा खिलाड़ी पक्का हो जाता है। नियम है कि जब तक खिलाड़ी कच्चा रहता है, अर्थात् गोल नहीं करता है, तब–तक उसे अंटी को कोणी से ही घीसना पड़ता है। इसीलिए इस खेल को कोणी घीस कहा जाता है।

राजा–रानी

यह भी अंटियों का ही खेल है। इसमें जमीन पर गुच्ची नहीं होती है। इसकी जगह एक गोला (वृत्त) लगभग एक फिट व्यास वाला बना लिया जाता है। इस खेल में खिलाड़ियों की संख्या दो या दो से अधिक होती है।

इस खेल में जितने खिलाड़ी बच्चे सम्मिलित होते हैं, सभी अपनी दो या दो से अधिक जितनी–जितनी अंटियों के लिए पहले तय होता है– गोले (वृत्त) में रख देते हैं। फिर सभी खिलाड़ी अपने–अपने हाथ में अलग से एक–एक अंटी रख लेते हैं। तत्पश्चात् गोले में पड़ी सभी अंटियों में से एक राजा और एक रानी अंटी चिन्हित की जाती है। इसके बाद एक–एक खिलाड़ी

गोले के समीप बैठकर राजा अंटी को चोट लगाता है। इसमें यदि राजा अंटी वृत्त के बाहर निकल जाये तो गोले की सभी अंटियाँ मारने वाले की हो जाती हैं, अर्थात् वही जीत जाता है।

यदि केवल रानी अंटी वृत्त से बाहर निकल जाये तो केवल वही अंटी मारने वाले की होती है और यदि रानी या राजा अंटी के साथ अन्य दूसरी अंटी वृत्त से बाहर निकल जाय तो दण्ड होता है। अर्थात् चोट मारने वाले खिलाड़ी को अपनी ओर से एक अंटी वृत्त में रखनी होती है।

भोपाल जल्ला

यह भी अंटियों का ही खेल है। इसमें भी खिलाड़ियों की संख्या निश्चित नहीं होती। परन्तु दो खिलाड़ी होना आवश्यक है। इस खेल को खेलने के पूर्व जमीन पर एक आयत बनाया जाता है, जिसे इस खेल में 'डब्बा' कहा जाता है। इस डब्बे के आमने–सामने की दोनों भुजाओं

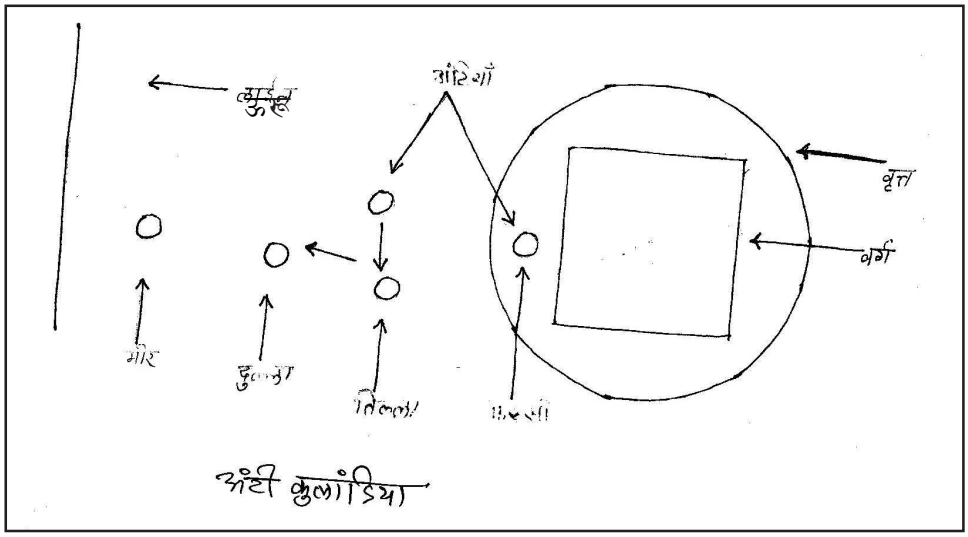

की लम्बाई आवश्यकतानुसार लम्बी होती है। परन्तु दोनों भुजाओं की आपसी दूरी इतनी होती है कि अंटी आ जाय। मुहानों पर की रेखाएँ इसी दूरी पर निर्भर करती हैं, अर्थात् चौड़ाई कम लम्बाई अधिक होती है। बने हुए डिब्बे को इस खेल की भाषा में 'जल्ला' कहा जाता है। जल्ले के तैयार हो जाने के पश्चात् समस्त खिलाड़ी अपनी–अपनी ओर से एक–एक अंटी इस जल्ले में रखते हैं, और एक–एक अंटी अपने–अपने दोनों हथेलियों की खोखली बनाकर उसके बीच में रख खोखली हिलायी जाती है। फिर एक–एक कर अचानक इस अंदाज में डिब्बे की तरफ अंटी फेंकी जाती है कि जल्ले के नजदीक पड़े, जल्ले के अंदर नहीं। जल्ले के अन्दर पड़ने पर पुनः उसे उसी तरह खखोल कर फेंकना पड़ता है। जिस खिलाड़ी की अंटी डिब्बे की रेखाओं के जितनी नजदीक

या दूर गिरती हैं। उसी से खिलाड़ियों को मीर, दुल्ला, तिल्ला आदि क्रम मिलता है। खखोल कर फेंकी हुई अंटी को अंटा कहा जाता है। सर्वप्रथम मीर अपना दाँव चलाता है। डिब्बे में लाईन से रखी हुई अंटियों में से किसी एक अंटी को निकालता है। यदि एक अंटी निकली तो जीत होती है। यदि एक से अधिक अंटी भोपाल जल्ले से निकल जाये तो दण्ड देना होता है।

किसी भी खिलाड़ी द्वारा यदि एक अंटी इस जल्ले से बाहर निकाल ली गई तो फिर बाकि के सभी खिलाड़ी बारी–बारी से उस खिलाड़ी के अन्टे को चोट लगाते हैं। अन्य समस्त खिलाड़ियों द्वारा उस खिलाड़ी के अन्टे में चोट न लगे तो फिर वह जल्ले की समस्त अंटियाँ जीत जाता है। यदि किसी खिलाड़ी ने उसके अन्टे को चोट मार दी तो जल्ले की समस्त अन्टियाँ उस खिलाड़ी की हो जाती हैं जो खिलाड़ी अन्टे में चोट मार देता है।

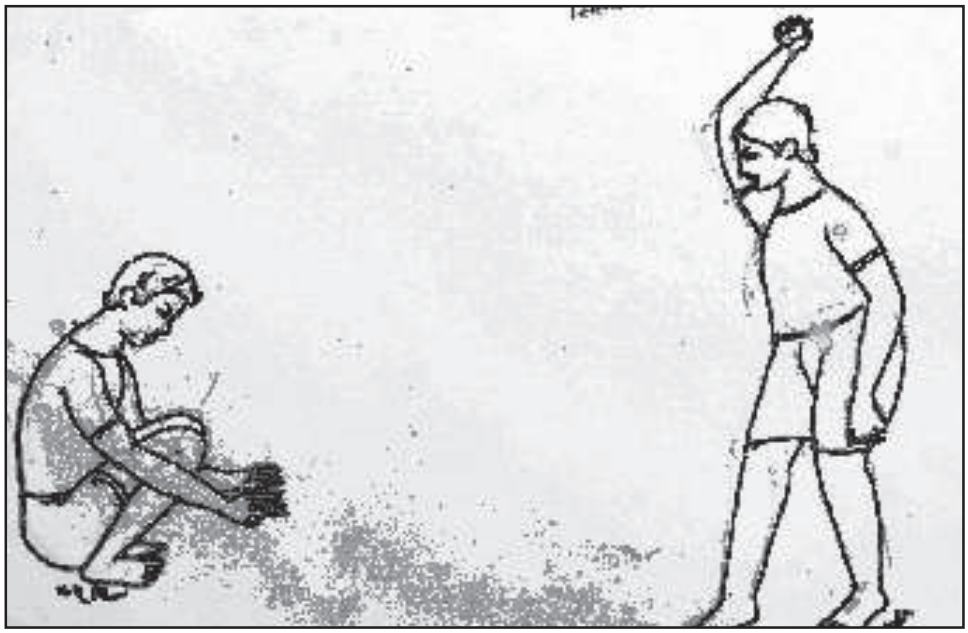

अंटी कुलांड़िया

इस खेल को खेलने से पहले खेल की तैयारी की जाती है। तैयारी में सबसे पहले जमीन पर एक वर्ग फीट व्यास का वृत्त (गोला) बनाया जाता है। उस वृत्त (गोले) में आवश्यकतानुसार वर्ग बिल्कुल मध्य में बनाया जाता है। इस वर्ग की हर भुजा वृत्त की दीवार (लाईन) को छूना नहीं चाहिये। फिर बने हुए वृत्त से लगभग एक फीट की दूरी पर एक लाईन बना ली जाती है।

इसी लाईन से निम्न प्रकार मीर, दुला, तिल.. फस्सी (सबसे आखिरी) का निर्धारण होता है।

समस्त खिलाड़ी से एक–एक अंटी लेकर कोई एक खिलाड़ी हाथ में खखोलकर खींची गयी लाईन की ओर फेंकी जाती है। इस लाईन से वृत्त के बीच जिस खिलाड़ी की अन्टी पड़ती है, वह फस्सी (सबसे आखिरी) क्रम पाता है। इस आखिरी क्रम में भी देखा जाता है कि लाईन से वृत्त की ओर की दिशा में लाईन के समीप किसकी अन्टी है, वही सबसे आखिरी क्रम पाता (फस्सी) है। इसके विपरीत दिशा में लाईन के सबसे नजदीक की पड़ी अन्टीवाला खिलाड़ी मीर (प्रथम) क्रम पाता है। फिर उससे अधिक जिन–जिन खिलाड़ियो की अंटी होती है। उनका क्रम दुल्ला, तिल्ला आदि दिया जाता है। इस तैयारी के पश्चात् सभी खिलाड़ी एक–एक अन्टी मीर को देते हैं। मीर उन समस्त अन्टियों को खखोल कर आहिस्ता से वृत्त में बने उस वर्ग में डालता है।

समस्त अन्टियों में से कोई भी अन्टी उस वर्ग से बाहर निकल जाती है तो मीर का दांव चला जाता है। दांव दुल्ला लेता है। यदि वृत्त में बने उस वर्ग से कोई अन्टी नहीं निकलती है तो फिर वही खिलाड़ी वर्ग में पड़ी हुई अंटियों में से किसी एक अंटी को सुरक्षित करने का इशारा करता हैं। अन्य खिलाड़ियों में से कोई एक खिलाड़ी किसी एक अंटी को चिन्हित कर एक अंटी सुरक्षित कर देता है। अब वह खिलाड़ी जिसने अंटी खखोल कर वर्ग में डाल अपने 'अन्टे' से सुरक्षित अन्टी को बचाते हुए अन्य अन्टियों में से एक को निशाना बनाकर चोट लगाता है। यदि वही एक अन्टी वर्ग और वृत्त से बाहर अन्टा सहित निकल गयी तो खिलाड़ी समस्त अन्टियाँ जो वर्ग में रखी गई थी,

जीत लेता है। और यदि चोट की गई अन्टी के साथ दूसरी अन्टी भी निकल गई या वृत्त की परिधि में कहीं भी अन्टा–अन्टी रुक गयी तो दांव चला जाता है। दण्ड के रूप में एक अन्टी अपनी तरफ से मिलाता है। दांव अन्य खिलाड़ी लेने लगता है। इस खेल को अन्टी कुलांड़िया कहा जाता है।

अन्टी

इस खेल में खिलाड़ियों की संख्या निश्चित नहीं होती है। आँगन या जहाँ थोड़ी खेलने की जगह मिल जाये, वहाँ खेल खेला जा सकता है। इसकी पूर्व तैयारी में पहले गुच्ची बनाई जाती है। गुच्ची से लगभग 5 से 7 फिट दूर पत्थर रखकर या फिर कोई निशान बनाया जाता है, जिसे 'डाल'कहा जाता है। इसी डाल पर से एक–एक खिलाड़ी अन्टी गुच्ची में डालता है। जिस खिलाड़ी की अन्टी गुच्ची में जाती है, वह मीर और बाकी खिलाड़ियों का क्रम गुच्ची से जितनी दूरी पर जिसकी अन्टी पड़ती है, उसी आधार पर निर्धारित होता है। इस तैयारी के बाद खेल चालू होता है।

सर्वप्रथम खेल में शामिल होने वाले समस्त खिलाड़ी मीर को अपनी एक–एक या जितनी–जितनी अन्टियों से खेलना है, उतनी–उतनी दे देते हैं। फिर मीर डाल पर जाता है। वहीं से समस्त अन्टियों को गुच्ची के लक्ष्य पर फेंकता है। जितनी अन्टियाँ गुच्ची में आ जाती है, वह उसी खिलाड़ी की हो जाती हैं। गुच्ची से बाहर पड़ी अन्टियों में फिर वह वहीं डाल पर खड़ा होकर अन्य खिलाड़ी द्वारा बताई गई अन्टी में अपने अन्टे से मारता है। यदि लग गयी तो समस्त अन्टियाँ ले लेता है। यदि चोट सही नहीं लगी तो सिर्फ गुच्ची की अन्टिया लेता है। यदि चोट मारते समय एक से अधिक अन्टियों में लग जाती है या अन्टा गुच्ची में चला जाता है तो फिर गुच्ची की समस्त अन्टियाँ लौटाने के साथ एक अन्टी दण्ड के रूप में लौटा कर दांव खो देता है। इसी तरह सभी खिलाड़ी अपना–अपना दांव खेलते हैं। इसे अन्टी खेल कहा जाता है। कहीं–कहीं इसमें थोड़ा बदलाव भी देखने में आता है। बदलाव यह कि खिलाड़ी द्वारा डाल से अंटी गुच्ची में डालने के बाद गुच्ची से बाहर पड़ी अन्टियों में से खिलाड़ी स्वेच्छा से किसी एक अन्टी को लक्ष्य कर एक हाथ की मध्यमा ऊँगली में फँसा कर मारता है। शर्त है कि जिस हाथ की मध्यमा ऊँगली का सहारा लिया जाता है। उसी हाथ का अँगूठा जमीन पर टिका होना चाहिए। बाकि नियम उपरोक्त ही होते हैं।

यही खेल जब पैसे (सिक्के) से खेला जाता है, तो इसे गुच्ची खेलना बोला जाता है। इसमें मध्यमा अँगुली–ऊँगुठा और दूसरे हाथ का कोई आवश्यक कार्य नहीं होता। बाकि सारे नियम अंटी के खेल की तरह ही होते हैं।

कुलाम डाल

इस खेल में खिलाड़ियों की संख्या अनिश्चित होती है। अक्सर ग्वालों को खेलते देखा जाता है। इस खेल के लिए ऐसे वृक्ष को चुना जाता है, जिसकी कोई एक शाखा जो मजबूत हो, जमीन से ज्यादा ऊपर न हो, जिससे जमीन पर कूदते समय चोट न लगे। वृक्ष चयन के पश्चात् सभी खिलाड़ी गोला बनाकर खड़े हो जाते हैं। फिर कोई एक खिलाड़ी उसी शाखा के नीचे जमीन पर एक वृत्त (गोला) अंदाजन व्यास वाला बना देता है,और बाँटने की प्रक्रिया करवाता है। इस प्रक्रिया में गोला (वृत्त) बनाकर खड़े सभी खिलाड़ी एक दूसरे की हथेलियों से हथेलियाँ जोड़कर झटके के साथ छोड़कर अपने ही हाथ की हथेली अपने ही हाथ की दूसरी हथेलियों पर देखते है कि चित या समान पुट हथेलियों से जो सर्वाधिक हो, उन्हें गोले से निकालकर अलग खड़ा कर देते हैं। यह क्रम तब तक चलता है जब तक दो खिलाड़ी शेष न बच जाये। फिर चित–पुट की वही

क्रिया दोहराई जाती है। दोनों खिलाड़ी से एक को बाहर कर लिया जाता है। शेष बचा खिलाड़ी दांव देता है।

अब खेल शुरू होता है। शाखा के नीचे बनाये गये वृत्त में एक– दो या तीन फिट की छड़ी रखी जाती है। अन्य खिलाड़ी वृक्ष पर चढ़ जाते हैं। इनमें से एक खिलाड़ी नीचे रहता है। वह खिलाड़ी अपनी एक टांग के नीचे से वह छड़ी उसी वृत्त में खड़ा होकर जोर से फेंकता है। दांव

देने वाला खिलाड़ी तुरन्त उसे वृत्त में रखने के लिए दौड़कर जाता है। जब तक दांव देने वाला खिलाड़ी छड़ी लेकर वृत्त तक पहुँचे, छड़ी फेंकने वाला खिलाड़ी वृक्ष पर चढ़ जाता है। दांव देने वाला खिलाड़ी वृक्ष पर चढ़कर या नीचे रहकर अन्य खिलाड़ियों को छूता है। छूने के इस प्रयास में किसी खिलाड़ी ने चतुरता दिखाकर पुनः वृत्त में रखी छड़ी उठा ली तो वह पुनःअपनी एक टांग के नीचे से जोर से फेंकता है। फिर दांव देने वाले खिलाड़ी को छड़ी लाने के लिए दौड़ना पड़ता है। यदि किसी खिलाड़ी के द्वारा वृत्त से छड़ी उठाने के प्रयास करते समय, छड़ी न उठाने के पहले ही दांव देने वाले खिलाड़ी ने छू दिया तो दांव उस दूसरे खिलाड़ी पर आ जाता है। इसी प्रकार यह खेल चलता रहता है।

अत्ती – पत्ती

इस खेल में खिलाड़ियों की संख्या निश्चित नहीं होती, परन्तु दो दलों का होना आवश्यक है। दो दल स्वेच्छा से बन जाते हैं। फिर 'चित–पुट'की क्रिया होती है। इसमें एक पत्थर या कोई पतली चपटी छोटी वस्तु लेकर एक तरफ निशान लगाकर चित और एक तरफ पुट (पट) निर्धारित किया जाता है। फिर समूह निर्धारित करते हैं कि कौन–सा दल चित माँगता है और कौन–सा पट (पुट)? इस क्रिया से दल द्वारा माँगा गया चिन्ह आ गया तो दूसरे दल को 'दांव' देना होता है। अर्थात् माँगी मुराद मिलने वाला दल जीतने वाला दल होता है। इसी दल के खिलाड़ियों से 'अत्ती–पत्ती' कहते हुए किसी वृक्ष की पत्ती लाने को कहा जाता है। अत्ती–पत्ती करते समय बोला जाता है– 'अत्ती पत्ती, अत्ती पत्ती, नीम की पत्ती लाव'। तब वाम दल के खिलाड़ी उसी वृक्ष की पत्ती लाने इधर– उधर भागने लगते हैं। पत्ती लाकर दल के मुखिया को दे देते हैं। खेल चलता रहता है। यदि वह दल (दांव देने वाला) पत्ती नहीं ला पाता है तो हार जाता है। इसी प्रकार एक बार दल अत्ती पत्ती माँगते है। फिर दुर्लभ वृक्ष की पत्ती माँगी जाती है। जो दल यह पत्ती नहीं ला पाता है, वह दल हार जाता है।

बच्चों में वनस्पति को जानने की क्षमता का विकास भी इस खेल से होता है।

सितोलिया (ढिंगली)

इस खेल में खिलाड़ियों की संख्या निश्चित नहीं है। परन्तु इसमें स्वेच्छिक दो दल बन जाते हैं। खेल के लिए पत्थर, कवेलू या फिर लकड़ी के गोल गत्ते छोटे से बड़े आकार के जिनकी संख्या सात होती है, लिये जाते हैं। एक कपड़े या फिर प्लास्टिक की गेंद (दड़ी) ली जाती है।

अब खिलाड़ियों के दो दल बनाये जाते हैं। चित–पुट के द्वारा तय किया जाता है कि कौन

सा दल पहले गेंद लेगा। गेंद लेने वाली पहली टीम तथा दूसरी टीम दांव देने वाली होती है। दांव देने वाली टीम का कोई एक खिलाड़ी उन पट्यों को इस क्रम में जमाता है कि सबसे छोटी पट्टी (टुकड़ा) सबसे ऊपर रहे। इसे ढिंगली या सतोलिया कहते हैं। इसी ढिंगली से 10 से 12 फिट दूर एक निशान बनाया जाता है। यहीं से गेंद के द्वारा ढिंगली पर वार किया जाता है। जैसे ही गेंद (दड़ी) से ढिंगली पर टकराती है, अन्य खिलाड़ी दूर भाग खड़े हो जाते हैं। गेंद से ढिंगली पर मार करने वाला खिलाड़ी तीन बार वार करता है, यदि ढिंगली गिराने में खिलाड़ी असफल होता है। तो दल का दूसरा खिलाड़ी आ जाता है, और यदि सफल हो जाता है, तो उसकी टीम के सारे खिलाड़ी दूर भाग खड़े होते हैं। अब ये खिलाड़ी ढिंगली जमाने की जुगत लगाते हैं। गेंद पर वाम टीम का आधिपत्य रहता है। दल के समस्त खिलाड़ी जिसको जैसा मौका मिले, दड़ी से मारकर

ढिंगली को नहीं जमाने देता है। यदि प्रतिद्वंदी टीम के खिलाड़ी को ढिंगली जमाते हुए दड़ी (गेंद) लग जाती है तो फिर दांव प्रतिद्वंदी टीम को देना होता है। इसी प्रकार यह खेल चलता रहता है। इसके लिए कोई समय सीमा निश्चित नहीं, परन्तु यह दिन में ही खेला जाता है।

गदामार

इस खेल में भी खिलाड़ियों की संख्या निश्चित नहीं होती है। जितने चाहे खेल सकते हैं। इस खेल को खुले मैदान में खेला जाता है। कपड़े की एक मध्य आकार की गेंद ली जाती है, जिसे

आसानी से फेंका जा सके। अब बराबर खिलाड़ियों की दो टीम बना ली जाती है। सभी खिलाड़ी मैदान में घुल–मिलकर फैल जाते हैं। अब शुरू हो जाता है गदामार खेल। अपनी–अपनी टीम को गेंद द्वारा पास देकर या फिर सीधा दूसरी टीम के खिलाड़ी को गेंद द्वारा मारा जाता है। गेंद किसी भी दल के खिलाड़ी के पास पहुँचे, वह अपनी टीम के खिलाड़ी को छोड़कर सामने वाली टीम के खिलाड़ी को ही मारता है। इसी तरह दौड़–भाग, मार–धाड़, हँसी–मजाक भरा यह खेल चलता है। इसमें भी समय की कोई पाबंदी नहीं होती है।

गढ़ा

इस खेल में भी खिलाड़ियों की संख्या निश्चित नहीं होती है, जितने चाहे खेलते है। न ही

कोई टीम बनती है। बस एक खुला मैदान देखकर जितने खिलाड़ी खेलते हैं, उतने ही में से एक खिलाड़ी को छोड़कर शेष जमीन पर छोटे गड्ढे बना लेते हैं। एक कपड़े से बनी मजबूत गेंद और जितने गड्ढे बने हैं, उतने खिलाड़ी के हाथ में एक–एक छड़ी होती है। वह एक खिलाड़ी जिसके लिए गड्ढा नहीं होता, वह दांव देता है। इसी के पास होती है गेंद।

अब गेंद से दांव देने वाला खिलाड़ी किसी भी खिलाड़ी को गेंद फेंकता है। फिर छड़ी वाले खिलाड़ी आती हुई गेंद से बचने के लिए छड़ी द्वारा गेंद की दिशा बदलते हैं। ऐसा करने में दांव देने वाला खिलाड़ी यह ध्यान रखता है कि कौन सा खिलाड़ी गड्ढा छोड़कर गेंद मार रहा

है। उसी पर जाकर अपना पाँव रख देता है तो दांव उस खिलाड़ी पर चला जाता है, जिसने गेंद मारने के लिए गड्ढा छोड़ा है या फिर गेंद से वह अपनी छड़ी से सुरक्षा नहीं कर पाता है, और गेंद शरीर के कोई भी हिस्से से छू जाय तो भी 'दांव'आ जाता है।

पत्थर छू (लोहा लक्कड़)

इस खेल में भी न कोई टीम (समूह) बनती है और न ही संख्या ही निश्चित होती है। एक खुला मैदान देखकर बच्चे इसमें खेलते हैं। एक जगह एक वृत्त (गोला) बनाया जाता है। फिर आपस में बँटकर तय करते हैं कि पहला दांव कौन देगा? हर एक खिलाड़ी के पास लम्बी छड़ी होती है। दांव देने वाले के पास लगभग 6 से 12 इंच लम्बी छड़ी होती है। उस छड़ी को दांव देने

वाला खिलाड़ी अपने दोनों पाँवों के बीच लेकर वृत्त में खड़ा हो जाता है। सभी खिलाड़ी उस छड़ी को वृत्त से निकालने का प्रयास करते हैं। वृत्त में खड़ा खिलाड़ी वृत्त से छड़ी निकालने वाले खिलाड़ी को छूने का प्रयास करता है। जब कोई भी खिलाड़ी चतुराई से वह छड़ी वृत्त से बाहर अपनी छड़ी से निकाल देता है तो खेल शुरू हो जाता है। अब सारे खिलाड़ी आस–पास छोटे–बड़े पत्थरों पर अपनी–अपनी छड़ी टिकाकर रखते है। फिर सभी खिलाड़ी इस जुगत में लग जाते हैं कि दांव देने वाले की वह छोटी छड़ी को अपनी छड़ी से उछाल कर वृत्त से दूर ले जाया जाये।

यदि किसी खिलाड़ी ने पत्थर से छड़ी हटाकर उस छोटी छड़ी को उचका दी और पुनःउस

खिलाड़ी को पत्थर नहीं मिला और दांव देने वाले खिलाड़ी ने छू दिया तो दांव उस खिलाड़ी पर आ जाता है। उसके हाथ की छड़ी इस दांव दे रहे खिलाड़ी को दे दी जाती है, और जिसको छुआ जाता है, अर्थात् दांव आ जाता है। उस खिलाड़ी को वहीं से वृत्त तक लंगड़ी (एक पैर से उचक–उचक कर तेजी से चलना) चलना पड़ता है। इसी तरह खेल चलता है।

घोड़ी दलाल

इस खेल में तीन खिलाड़ी होते हैं। एक घोड़ी बनता है। एक खरीदने वाला और एक बेचने वाला होता है। खरीदने वाला घोड़ी वाले से पूछता है कि घोड़ी कितने की है? तो घोड़ी वाला बोलता है– दो हजार की है या एक लाख की है, तो खरीदने वाला उसकी (घोड़ी की) पीठ पर हाथ फेरता है। घोड़ी बिदक कर लात मारती है और भागती है। बाकी बच्चे उसे पकड़ने को दौड़ते हैं। उसे पकड़ने पर कहते हैं– घोड़ी अच्छी है। फिर दुबारा खेल शुरू होता है। इस बार दूसरा खिलाड़ी घोड़ी बनता है, खेल चलता रहता है।

कुश्ती

इस खेल को बच्चे रेत या फिर मिट्टी के बने अखाड़े में खेलते हैं। इसमें दो खिलाड़ी एक दूसरे से भिड़कर शक्ति अजमाते है। एक दूसरे को चित करने के लिए अपने–अपने दांव लगाते है, जो खिलाड़ी चित्त हो जाता है, वह हार जाता है।

आजकल यह राष्ट्रीय खेल बन गया है। इसमें (प्रशिक्षक) गुरु भी होता है। इस खेल का उद्देश्य शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन है।

करतब

यह खेल–खेल भी है और प्रशिक्षण भी। इसके लिए जगह निश्चित कर अखाड़ा बनाया जाता है। जहाँ नियमित रूप से बच्चे आते हैं और गुरुओं द्वारा प्रशिक्षित होते हैं। इस खेल में पट्टा, लकड़ी, बन्नाटी, तीर, तलवार, भाला, डंडा, लकड़ी बैठक, दण्ड बैठक आदि सिखाया जाता है। अब जूडो कराटे भी शामिल कर लिया गया है।

कांदाफोड़

इस खेल में भी खिलाड़ियों की संख्या निश्चित नहीं होती। न ही कोई टीम बनती है, यह सामूहिक खेल है। इसमें एक खिलाड़ी पैर को लम्बा करके नीचे बैठ जाता है। फिर सब खिलाड़ी उसको लांघ कर जाते हैं। फिर वह अपने पाँव पर पाँव रखता है। फिर सारे खिलाड़ी उसको लांघ कर निकलते हैं। फिर वह खिलाड़ी अपने हाथ उस पाँव पर रख लेता है। फिर सारे खिलाड़ी उसे लाँघते है। फिर वह खिलाड़ी उकडू होकर अपने पाँव के अँगूठे को पकड़ता है। फिर सारे खिलाड़ी उसे लाँघते है। इसी तरह वह खिलाड़ी अपनी पिल्ली, घुटने और फिर पूरी तरह खड़ा हो जाता है, और हर आकृति पर अन्य खिलाड़ी उस पर से छलांग लगाते हैं।

छलाँग लगाते समय यदि उस खिलाड़ी से छू जाता है, फिर छलाँग लगाने (कूदने) वाला खिलाड़ी आऊट माना जाता है। यदि बिना छुए कूद जाता है तो आऊट नहीं माना जाता है। इसी प्रकार यह खेल चलता रहता है। समय सीमा नहीं होती है।

पत्ता सूंघ

यह खेल वृक्षों के सान्निध्य में खेला जाता है। इसमें दो समूह में खिलाड़ी बँट जाते हैं। एक समूह दांव (दाम) देता है तथा दूसरा दांव (दाम) लेता है। दांव लेने वाला पक्ष दांव देने वाले पक्ष से कहता है –फलाँ पेड़ की पत्ती लाओ। खिलाड़ी वह पेड़ ढूँढकर पत्ती लाता है। तब तक दांव लेने वाले पक्ष के समस्त खिलाड़ी वहीं आस–पास छुप जाते हैं। दांव देने वाले पक्ष के खिलाड़ी उन्हें ढूँढकर किसी एक खिलाड़ी को वह पत्ता सुँघा देता है। फिर दांव सामने वाले पक्ष

के खिलाड़ी जिसको पत्ता सुँघाया गया है, उस समूह पर चला जाता है। वह फिर इसी प्रकार वृक्ष का पत्ता लाने को कहता है। इसी प्रकार यह खेल चलता है। इसमें समय सीमा नहीं होती है।

आँवली–पीपली

इस खेल में भी दो दल होते हैं। खिलाड़ियों की संख्या निश्चित नहीं होती। सर्वप्रथम किसी वृक्ष की हरी डाली से डंडा बनाया जाता है। इसी डंडा को आँवली कहा जाता है। फिर खेल के लिए अधिक पेड़ वाला स्थान चुना जाता है। एक दल दाम देने वाला दूसरा दल दाम लेने वाला होता है। दाम लेने वाले दल के द्वारा 'आँवली' को दाम देने वाले दल की नजर बचाकर किसी पेड़ की डालियों के झुरमुट में छुपा दिया जाता है। फिर दाम देने वाले दल को पेड़ (वृक्ष) का नाम बताकर 'आँवली' ढूँढने को कहा जाता है। वह दल पेड़ पर जाकर 'आँवली' ढूँढता है। 'आँवली' मिल जाती है तो वह अपने प्रतिद्वंदी दल को लाकर देता है। फिर प्रतिद्वंदी दल को 'आँवली' ढूँढने को दिया जाता है। इसे खेल में हार जीत 'आँवली' के मिलने पर निर्भर होती है।

सरिया गाड़

यह खेल वर्षा के मौसम में खेला जाता है। इसमें पाँच–सात लड़के इकट्ठे हो जाते हैं। लोहे की लगभग एक–दो फिट लम्बी छड़ ले लेते हैं। एक स्थान पर उसी छड़ से एक वृत्त (गोला) बना लेते हैं। फिर सभी खिलाड़ी इसके आस–पास खड़े हो जाते हैं। बारी–बारी से सभी उस छड़ को उस वृत्त में फेंक कर गाड़ते हैं। जिसके द्वारा यह छड़ नहीं गड़ती, उसको दाम देना होता है। जिसके द्वारा छड़ गड़ जाती है, उसके अगले क्रम वाला लड़का उस गोले में पहले छड़ गाड़ता है। फिर गोले से दूर गाड़ता–उठाता, गाड़ता–उठाता है। सरिया गोले से दूर गाड़ता–उठाता, गाड़ता–उठाता दूर तक ले जाता है, जब तक वह छड़ नीचे न गिरे। जहाँ सरिया गिर जाता है, वहीं से दाम देने वाले खिलाड़ी को गोले तक पैर से लंगड़ी चलनी पड़ती है। इसे लड़के व लड़की दोनों ही खेलते है।

नाहर–बकरी (डमरू)

यह खेल नाहर–बकरी या डमरू खेल के नाम से जाना जाता है। इस खेल के लिए किसी

लम्बे–चौड़े मैदान की आवश्यकता नहीं होती। घर के आँगन, ओटले, ओसारे, किसी वृक्ष के नीचे, जहाँ कहीं भी थोड़ी सी जगह मिले, खेला जा सकता है।

किसी तक्ती, पुट्ठे या फर्श पर किसी रंग, लकड़ी के बने कोयले, चाक आदि से इसे चित्र की भाँति बना लिया जाता है।

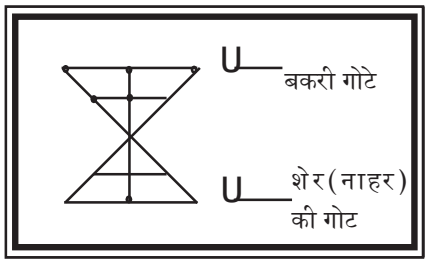

दो तिर्यक रेखाएँ इस प्रकार खींची जाती हैं कि दोनों एक दूसरे को बिल्कुल मध्य से काटें। दोनों रेखाओं के छोरों को रेखा खींचकर आपस में मिला दिया जाता हैं। प्राप्त आकृति के दोनों ध्रुवों पर यह रेखाएँ खींची जाती है। इस प्रकार प्राप्त आकृति में हमें एक दूसरे से सम्बद्ध दो त्रिभुज प्राप्त होते हैं। अब इन त्रिभुजों के मध्य एक सीधी रेखा इस प्रकार खींची जाती है कि दोनों त्रिभुजों के दोनों ध्रुवों पर लम्बवत् हो। अब दोनों त्रिभुजों के बीच कटान बिंदु और दोनों त्रिभुजों के बीच खींची गई सरल रेखा के समानांतर मध्य में दोनों त्रिभुजों पर एक–एक रेखा और खींच दी जाती है। अब प्राप्त आकृति में चार त्रिभुज और चार आयत प्राप्त हो जाते हैं। सम्पूर्ण आकृति एक डमरू की शक्ल ले लेती है। यही है खेल का मैदान जिसे बिना किसी खर्च के तैयार कर लिया है।

इस खेल में केवल दो ही खिलाड़ी होते हैं, जो आकृति को बीच में कर आमने–सामने बैठकर गोट के माध्यम से खेलते हैं। इमली के चीयें, कंकड़ या इसी प्रकार की कोई वस्तु जो आकृति के प्रत्येक कटान बिन्दुओं पर रखी जा सके।

इस खेल में नाहर (शेर) मरता नहीं है। बकरियों के माध्यम से घेरा डालकर चलने पर मजबूर किया जाता है। बकरियों को नाहर (शेर) खा जाता है, परन्तु नियमानुसार। माना नाहर गोट के सामने वाले कटान बिन्दु पर बकरी गोट रखी है और उसके ठीक पीछे वाला कटान बिन्दु रिक्त है, तो फिर बकरी गोट पिट जाती है, अर्थात् नाहर बकरी को खा जाता है। यदि बकरी गोट के पीछे वाले कटान बिन्दु पर कोई बकरी गोट और रखी है तो फिर नाहर (शेर) गोट को पीछे हटाना पड़ता है या फिर आजू–बाजू चलना होता है। गोट हमेशा सरल रेखा में चलनी होती है जो रेखाएँ आकृति पर होती हैं, उनके अनुसार बकरी गोट सात होती है, नाहर गोट सिर्फ एक होती है। रिक्त कटान बिन्दुओं पर ही गोट की चाल चली जाती है।

यदि शेर ने समस्त गोटों को पीट दिया तो यहीं पारी समाप्त हो जाती है। शेर जीत जाता है। यदि बकरियों ने अपने–आपको बचाते हुए शेर को किसी एक कोने में घेर दिया। शेर के पास

आजू–बाजू रिक्त कटान बिन्दु नहीं बचा तो फिर बकरियों वाला खिलाड़ी जीत जाता है। नाहर की हार होती है।

गेड़ी

इस खेल में लम्बे–चौड़े मैदान की आवश्यकता होती है। थोड़ी बहुत खुली जगह में भी इसे खेला जा सकता है। परन्तु खिलाड़ियों की संख्या के मान से ही जगह का चयन किया जाता है।

गेड़ी खेल के लिए पूर्व से तैयारी की जाती है। प्रत्येक खिलाड़ी को अपनी–अपनी गेड़ी तैयार करनी होती है। दो समान लम्बाई व मोटाई की लाठी ली जाती है। लाठी बाँस,बबूल या अन्य किसी वृक्ष की हो सकती है। परन्तु मजबूत लाठियाँ ही ली जाती हैं।

लकड़ी के चार गत्ते लगभग एक–एक फीट के लिए जाते हैं, जिनकी लम्बाई–मोटाई बराबर–बराबर होती है। इन चारों गत्तों को छील कर चपटा कर लिया जाता है। अब दोनों लाठियों को बराबरी से किसी माध्यम से खड़ी कर लिया जाता है। सतह पर रख लाठियों के मुहाने से ऊपर की ओर लम्बाई माप कर दो गत्ते एक लाठी पर समानांतर रखकर किसी मजबूत रस्सी से इस प्रकार बाँधा जाता है कि लाठी पर फंग्सा बन जाये। दोनों लाठियों पर बराबर ऊँचाई पर यह फंग्सा (पायदान) बनाया जाता है। अपनी–अपनी आवश्यकता अनुसार ऊँचाई ली जाती है। इस प्रकार गेड़ी बनकर तैयार हो जाती है, जो कि खिलाड़ी के लिए होती है।

गेड़ी के इस खेल में खिलाड़ियों की संख्या निश्चित नहीं है। परन्तु कम से कम दो खिलाड़ी होना आवश्यक है। यह करतब भरा खेल है। इसमें शारीरिक संतुलन बहुत जरूरी है अन्यथा खिलाड़ी भाग नहीं ले सकता।

मैदान में कहीं –कहीं पर एक निशान बनाया जाता है। इस निशान से दूरी तय कर सारे खिलाड़ी अपनी–अपनी गेड़ी लेकर खड़े हो जाते हैं। कोई एक खिलाड़ी रेफरी बन जाता है। इसी के इशारे पर सभी खिलाड़ी शारीरिक संतुलन बनाते हुए गेड़ी पर दोनों पैर रखकर तैयार हो जाते हैं। रेफरी के इशारे पर सभी खिलाड़ी अपनी–अपनी गेड़ी के द्वारा दौड़ते हैं। जो खिलाड़ी चिन्हित जगह पर सबसे पहले पहुँचे, वही विजयी होता है।

दूसरा खेल दो खिलाड़ियों का होता है। दोनों खिलाड़ी गेड़ी पर करतब करते हुए आपस में गेड़ी लड़ाते हैं। जो खिलाड़ी शारीरिक संतुलन खोकर गेड़ी से नीचे गिर जाता है। वही खिलाड़ी हारा हुआ माना जाता है।

वर्षा के दिनों में कीचड़ से बचने के लिए भी गेड़ी का उपयोग किया जाता था। अब यह चलन कहीं देखने को नहीं मिलता है।

खप्पा घोड़ी

इस खेल को खेलने के लिए भी अन्य खेलों की तरह मैदान की आवश्यकता होती है, परन्तु खिलाड़ियों के मान से मैदान होता है। इसकी तैयारी में कोई खर्च नहीं आता। किसी देवस्थान जाकर वहाँ से टूटे हुए नारियल के दो गोल छिलके जिसे बोलचाल की भाषा में नट्टी कहा जाता है। नट्टी बिल्कुल कटोरी के आकार की ली जाती है। जिसके बीचों–बीच प्राकृतिक छिद्र जिसे नरियल की आँख कहा जाता है, होते हैं।

एक सूत या सन (रेशेदार पौधा) की मजबूत रस्सी खिलाड़ी के अपने कद की दो गुना लम्बी रस्सी ली जाती है। इस रस्सी के दोनों मुहाने नारियल की ली गई नट्टी को औंधी रखकर छिद्र (आँख) में से नीचे निकाल दिया जाता है। निकले हुए दोनों मुहानों में प्रत्येक में गठाने लगा दी जाती है, जिससे कोई मुहाना नट्टी से बहार न आने पाये।

इस प्रकार हो जाती है – 'खप्पा–घोड़ी' सभी खिलाड़ी अपनी–अपनी खप्पा घोड़ी तैयार कर खेल के लिए मैदान में पहुँच जाते हैं। कोई एक खिलाड़ी मुखिया (निर्णायक) बनता है। वही मैदान में कहीं भी एक जगह चिन्हित कर देता है। इसी चिन्हित जगह से दूरी तय कर सभी खिलाड़ियों को खड़ा कर दिया जाता है। सभी खिलाड़ी अपनी–अपनी खप्पा–घोड़ी पर सवार होने की तैयारी कर लेते हैं।

सभी खिलाड़ी अपने–अपने पाँवों के पंजों को खप्पा घोड़ी की नट्टियों पर रखकर लगी हुई रस्सी के मुहाने को पाँवों के अंगूठे और अंगूठे के पास वाली अंगुली से दबाकर पकड़ लेते हैं। और लगाम (रस्सी) को दोनों हाथों से पकड़ लेते हैं। बिल्कुल किसी घुड़सवार की तरह। अब ऐड़ियाँ जमीन पर नहीं रहती। पंजों के बल खड़ा होना होता है। निर्णायक खिलाड़ी एक–दो–तीन बोलता है। तीन बोलते ही सारे खिलाड़ी दौड़ने लगते हैं। जो खिलाड़ी पहले चिन्हित स्थान पर पहुँच जाता है। वही खिलाड़ी विजयी घोषित होता है। बाद के दूसरे तथा तीसरे नम्बर पर पहुँचने वाले खिलाड़ियों को दूसरा–तीसरा स्थान मिलता है। वर्षा के दिनों में बच्चों के कीचड़ से बचने का साधन भी था खप्पा–घोड़ी।

तीन बनिया

इस खेल में मैदान की आवश्यकता नहीं है, कहीं भी जहाँ एकांत हो, दो खिलाड़ियों के बैठने की जगह हो, खेला जा सकता है।

दफ्ती, पुट्ठे या फर्श पर रंग, कोयला या चाक से एक चित्र बना लिया जाता है, इसमें

सभी रेखाओं की लम्बाई बराबर अर्थात् चारों भुजाएँ बराबर खींची जाती हैं। फिर इसी के अन्दर समान दूरी रखते हुए एक के बाद एक वर्ग और बना लिए जाते हैं। इस प्रकार तीन वर्ग एक के अन्दर एक बन जाते हैं।

अब बाहर के वर्ग प्रत्येक भुजा के मध्य से तीसरे वर्ग की भुजा के मध्य तक चारों दिशाओं से एक–एक कर चार सरल रेखाएँ खींच दी जाती हैं। प्राप्त आकृति को खेल की भाषा में तीन बनिया कहा जाता है।

इस खेल में दो खिलाड़ी होते हैं, जो आमने–सामने बैठकर खेलते हैं। प्रत्येक खिलाड़ी के पास सात–सात गोटे होती हैं। ये गोटें भिन्न–भिन्न रंगों की रखी जाती हैं, जिससे कि खिलाड़ी अपनी–अपनी गोटें आसानी से पहचान सके।

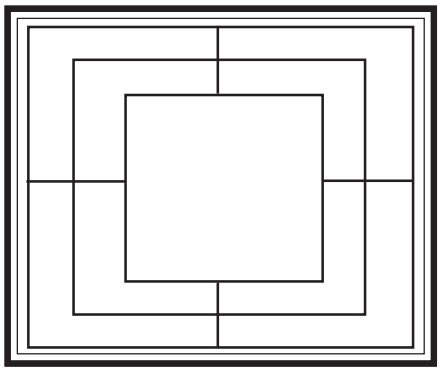

दोनों खिलाड़ियों को अपनी–अपनी गोटें अपने–अपने हाथ में रखनी होती है। एक के बाद एक खिलाड़ी को अपनी–अपनी गोट आकृति में निर्मित कटान बिन्दु पर रखनी होती है, जिसे चलना कहा जाता है। जिस खिलाड़ी की तीन गोटें एक कतार में अर्थात् सरल रेखा में आ जाती हैं, उसका जुट बन जाता है। तीन गोटों को एक रेखा पर आने को जुट कहा जाता है।

आकृति के कटान बिन्दुओं पर हाथ से रखी गोटों से प्रत्येक खिलाड़ी एक के बाद एक चाल चलता है। ध्यान रखा जाता है कि सामने वाले खिलाड़ी का कहीं भी जुट न बन जाये। जहाँ भी प्रतिद्वंदी खिलाड़ी के जुट बनने की सम्भावना लगती है। अपनी चाल आते ही बनने वाले जुट के बीच, आगे–पीछे कहीं भी गोट रखकर जुट बनने से रोक दिया जाता है।

हार–जीत निम्न शर्तों पर निर्भर करती है– जुट बनाने के प्रयास में या एक–दूसरे के जुट न बनने के प्रयास में जिस खिलाड़ी के हाथ की समस्त गोट रखा जाती है। और जुट नहीं बन पाता है, वही खिलाड़ी हार स्वीकार करता है। या– यदि दोनों खिलाड़ी जुट नहीं बना पाते हैं तो यह देखा जाता कि किस खिलाड़ी के हाथ की गोट पहले खत्म हुई। जिस खिलाड़ी के हाथ की गोट पहले खत्म हुई, वही हार स्वीकार करता है। या– जो खिलाड़ी पहले दो जुट बना दे, वही विजयी होता है। इस प्रकार जब तक खिलाड़ी चाहे खेल चलता रहता है।

छाप

इस खेल में शामिल होने वाले खिलाड़ी को खाली माचिसों को तोड़कर बहुत सारे चित्र वाले कार्ड जिसे पाकेट भी बोला जाता है। इकठ्ठे करने होते हैं।

यह दो खिलाड़ियों के बीच होता है। दोनों अपने–अपने हाथ में बहुत सारे पाकेट रख लेते हैं, फिर एक के बाद एक जमीन पर इस प्रकार से एक के ऊपर एक रखते हैं कि चित्र दिखे। यह तब तक चलता है, तब–तक दोनों पाकेट के चित्र एक जैसा न मिले।

यदि पहले खिलाड़ी ने पाकेट डाला और दूसरे ने भी ऐसा ही किया और उसका चित्र पहले वाले खिलाड़ी के पाकेट से मिल गया, तो वह बाद में पाकेट डालने वाला खिलाड़ी जीत जाता है और जमीन पर डाले गये सारे पाकेट ले लेता है। इस खेल में अन्य छाप कोड़ी का उपयोग भी कर लिया जाता है।

किशोरियों के खेल

घर–घर

यह खेल लड़कियों द्वारा खेला जाता है। लड़कियाँ धूल से घर बनाती हैं। इसमें चूल्हा–चौका और गृहस्थी की समस्त चीजों को काल्पनिक रूप से बनाती हैं। यहाँ तक बैठक, शयन, रसोई कक्ष अलग–अलग धूल के ही बनाती हैं। कुल देवी–देवताओं और गवाड़ा (मवेशी बाँधने का स्थान) बनाया जाता है, जिसमें गुड्डे–गुड्डियों का विवाह किया जाता है।

पाँचे

इस खेल में दो या दो से अधिक लड़कियाँ होती हैं, जो गोल घेरे में एक नियत स्थान पर बैठकर खेलती हैं। इस खेल को खेलने के पूर्व लाख के छोटे–छोटे पाँच गोली या फिर कनेर (एक वृक्ष का नाम) के बीज या फिर इसी आकार के पाँच पत्थर लिये जाते हैं। इन्हीं पाँच पत्थरों की संख्या के आधार पर खेल का नाम पाँचा रखा गया है। सामान्यतः ये पाँच ही होते हैं, परन्तु कुछ–कुछ लड़कियाँ नौ भी ले लेती हैं।

सभी खिलाड़ी गोला बना पाँव फैला कर या गोड़ी (पैर पर बैठने की आसान क्रिया) मार कर बैठ जाती हैं। कोई एक लड़की पाँचे हाथ में लेकर जमीन पर डालती है। दूसरी लड़की उसको गोट बताती है। वह लड़की उस गोट को उठाकर ऊपर उछालकर नीचे पड़े पाँचे से एक उठाकर उसी हाथ से उछाली हुई गोट पकड़ लेती है। इसी तरह जमीन पर पड़े सारे पाँचे उठाती

है। ऐसा करते समय यदि उछाली गोट पकड़ में न आये और जमीन पर गिर जाये तो दाम चला जाता है या फिर जमीन से पाँचे उठाते समय दूसरा पाँचा हिल गया तो भी दाम चला जाता है। दाम जाने पर दूसरी खिलाड़ी का दाम आ जाता है। नहीं तो एक ही खिलाड़ी पाँचे खेला करती है। अन्य उसे ध्यान से देखती हैं।

फूँदी

यह दो खिलाड़ी का खेल है, कभी–कभी इसको चार भी एक साथ खेल लेती हैं। इस खेल में पहला खिलाड़ी अपने दाहिने हाथ से दूसरे खिलाड़ी का बायां हाथ तथा अपने बायें हाथ से दूसरे खिलाड़ी का दाहिना हाथ पकड़ती है। पूरी तरह तनकर दोनों खिलाड़ी एक दूसरे पर सम बल डालकर तेजी से चक्रवात की तरह गोल–गोल घूमती हैं। जब तक सांस न फूल जाये। सांस फूलने पर ये बंद हो जाती है।

कुट कुट कांकरा

बालिकाओं के इस खेल में भी खिलाड़ी की संख्या निश्चित नहीं हैं, परन्तु इसे चार से छः बालिकाओं को एक साथ खेलते देखा गया है। इसमें गोला बनाकर इस प्रकार बैठते हैं कि एक पैर का घुटना जमीन से टिके और दूसरे पैर का घुटना ऊपर आकाश की दिशा में रहे। सभी खिलाड़ी अपने–अपने ऊपर उठे हुए घुटने पर अपना–अपना हाथ रख लेते हैं, जिससे घुटना ढँक

जाता है। एक खिलाड़ी गीत *'कुट–कुट (कंकड़ को दिया जाने वाला नाम) कांकरा पुरी को तेल, खण्ड मिठाई मीठो तेल। आ रे कुत्ता हाँडी चाट'* गाते हुए घुटने पर रखे हुए किसी भी खिलाड़ी के हाथ में कांकरा (कंकड़) छुपा दिया जाता है। फिर वह खिलाड़ी बालिका आती है जो समूह में नहीं बैठी होती है, जिसे दाम देना होता है, और घूमकर कांकरे को ढूँढती है। तीन बार बताने में यदि कांकरा पकड़ में आ जाये तो फिर दाम उसी को देना पड़ता है, जिसके पास कांकरा छुपाया गया था। नहीं तो पुनःउसी को जाना पड़ता है। कांकरा बताकर पुनः पूर्व की भाँति छुपाया जाता है।

लंगड़ी

इस खेल में लड़कियों के दो दल बना लिये जाते हैं। एक दल खेलता है और दूसरा दल दांव (दाम) देता है। किसी लकड़ी या राख से एक बड़ा वृत्त (गोला) बनाया जाता हैं। इसके अन्दर खेलने वाली लड़कियाँ खड़ी हो जाती हैं। दांव देने वाली टीम (दल) में से कोई एक लड़की अपना पैर ऊँचा कर एक पैर से घेरे में घुसती है। उचक–उचक कर दौड़ते हुए गोले में खड़ी लड़कियों को छूती है। जितनी लड़कियों को वह छूती है, वे आउट होकर गोले से बाहर आ जाती हैं। यदि ऐसा करते समय दाम देने वाली लड़की का पाँव जमीन पर टिक जाता है, तो वह स्वयं आउट हो जाती है। तब उसकी जगह टीम की दूसरी लड़की लंगड़ी (एक पाँव पर उचक–उचक कर चलना) खेलती है। गोले के अन्दर की सभी लड़कियाँ आउट हो जाने के बाद फिर यह दल घेरे में आकर खेलता है। और घेरे वाले पूर्व दल को लंगड़ी खेलना पड़ता है। इस प्रकार जीत–हार होती है। समय सीमा निश्चित नहीं होती है।

भटूंगड़िया

इस खेल मे कोई टीम (समूह) नहीं बनती, न ही कोई मित्र–दुश्मन होते हैं और न कोई द्वंदी। आँगन या लम्बे–चौड़े ओटले (मिट्टी या ईटों से निर्मित लगभग दो–तीन फीट ऊँचा स्थान) या फिर जहाँ धूल ना हो, ऐसी जगह पर चाँदनी रात में लड़कियाँ इकट्ठी हो जाती हैं। फिर एक–एक लड़की अपने दोनों पाँवों के टखनों के नीचे से दोनों हाथ निकाल कर एक–एक मुट्ठी से दोनों पाँवों के एक–एक अंगूठे को पकड़कर गोल–गोल लुढकती है। इसे भटूंगड़िया कहा जाता है। इसको बारी–बारी से सभी लड़कियाँ खेलती हैं। गाती जाती है– *'सब खेल खेली भटूंगड़िया नी खेली'* या फिर बोलती है– *'गड़बड़ तुम्बा यई बाट'*।

पौवा

यह खेल आँगन या कम जगह में भी खेला जा सकता है। इसमें दो खिलाड़ी बालिकाएँ

होती हैं, जिनके बीच हार–जीत रहती है। इस खेल की तैयारी करने के लिए पहले कोयला, खड़ी, चाक द्वारा जमीन पर तीन खड़ी लम्बी समान्तर रेखाएँ खींची जाती हैं। इनके बीच की दूरी लगभग दो फिट या अधिक रखी जाती है। फिर 6 आड़ी रेखाएँ लगभग 2-2 फिट की दूरी पर खींची जाती हैं। इनके दस खाने बन जाते हैं, जो लगभग 2×2 या इससे अधिक हो सकते हैं। कवेलू या चपटा गोल लगभग दो इंच या अधिक व्यास वाला पत्थर का टुकड़ा लिया जाता है, जिसे 'पौवा' कहते हैं फिर बारी–बारी से एक–एक बालिका खेलती हैं।

खेल के प्रारम्भ में एक बालिका पौवा लेकर बने हुए सम्पूर्ण आयत के किसी भी मुहाने पर खड़ी रहकर उसके समक्ष के प्रथम खाने में डालती है। पौवा डालते समय सावधानी रखनी होती है कि खाने की किसी दीवार से बाहर नहीं जाना चाहिये। यदि बाहर चला गया तो दाम चला जाता है। यदि पौवा खाने की चारों लाईनों के बीच पड़ता है तो फिर जिस खाने में पौवा डाला गया, ठीक उसी के बाजू वाले खाने से एक पाँव से समस्त खानों को पार कर पौवा वाले खाने में आना होता है। खाना कूदते समय यदि लाईन पर पैर रखा गया, तो दाम चला जाता है। यदि नहीं रखाया तो पौवा को उसी पैर की ठोकर से खाने के बाहर निकाला जाता है। यदि पौवा लाईन पर रुक गया तो दांव चला जाता है। यदि बाहर निकल गया तो उसके आगे वाले खाने में पौवा डाला जाता है। इसी प्रकार 10 खाने वाला पौवा डाल–डाल कर लंगड़ी के द्वारा पार कर लिया जाता है। तो फिर मनचाहे खाने में तिर्यक निशान लगा दिया जाता है। यह घर कहलाता है। इस खाने में जिसका घर है, वही खिलाड़ी दोनों पाँव में खड़ी होती है। अगली बार पौवा डालकर लंगड़ी खेलने पर। परन्तु प्रतिद्वंदी खिलाड़ी न तो इस घर में पाँव टेकता है, और न ही अपने पौवे को ठोकर मारने पर रुकने देती है। यदि पौवा इस घर में रुक गया तो भी दांव चला जाता है। प्रतिद्वंदी का सारे खेल तक, वह घर उसी पैर से कूदना पड़ता है, जिस पैर से लंगड़ी चली जाती है, यदि घर कूदते समय लाईन पर पैर रखा गया तो भी दांव चला जाता है। अन्त में घरों की गिनती होती है, जिसके घर ज्यादा वह जीत जाती है।

छबड़ी

यह खेल सामूहिक खेल है। इस खेल में एक औंधी टोकरी रखकर उसके ऊपर और टोकरियाँ रखी जाती हैं। फिर वहाँ उपस्थित बालिकाएँ एक–एक कर उसके ऊपर से कूदती हैं। जो इसे कूदने में असफल रहती है, उसकी हँसी होती है। कूदने वाली लड़कियों से उसके पति का नाम पूछा जाता है। जिसकी सगाई होती है, वह तो बता देती है, परन्तु जिसकी सगाई नहीं होती, वह शर्माकर हँस देती है। उसको फिर '*ए को लाड़ो हाँड्यो पेटलियो*' इस प्रकार हँसी उड़ाने का खेल चलता रहता है। इस खेल में भी समय सीमा नहीं होती।

इमल

इसमें चार खिलाड़ी लड़कियाँ होती है। दो–दो लड़कियों के समूह बनते हैं। पहले कौन–सा समूह दाम (दाँव) देगा, यह आपस में तय कर लिया जाता है। एक समूह की लड़कियाँ सतह पर लगभग दो फीट लम्बी लकीर खींच कर इसके दोनों मुहाने पर आमने–सामने मुँह करके पैर पर बैठ जाती हैं। दूसरे समूह की दोनों लड़कियाँ बैठी हुई लड़कियों के दाहिने या फिर बायें हाथ की तरफ खड़ी हो जाती हैं। बस यहीं से शुरू होता है इमली खेल।

खड़ी हुई दोनों लड़कियाँ एक के बाद एक खींची गई लकीर को बैठी हुई लड़कियों के मध्य से इधर से कूदकर उधर और फिर लकीर को कूदकर अपनी जगह पर आकर खड़ी हो जाती है। बैठी हुई लड़कियाँ अपना–अपना बालिश्त एक के ऊपर एक जमीन पर खींची गई लकीर के मध्य में खड़ा कर देती हैं । बालिश्त इस प्रकार खड़ा करती है कि एक लड़की के हाथ की चूँटी अंगुली (कनिष्का) लकीर पर टिके तथा अँगूठा आकाश की दिशा में ऊँचा हो। तदुपरान्त बैठी हुई दूसरी लड़की अपना बालिश्त, इसी उठे हुए बालिश्त पर खड़ा करती हैं। अब खड़ी हुई दोनों लड़कियाँ इसे एक के बाद एक कूदकर पुनः अपने स्थान पर आकर खड़ी हो जाती हैं। सफल होने पर बैठी हुई लड़कियाँ अपने दोनों हाथों के बालिश्त एक के ऊपर एक खड़ा कर देती हैं। खड़ी हुई लड़कियाँ पूर्व की भाँति एक–एक कर बालिश्त के ऊपर से कूदकर उस पार जाती हैं और पुनः कूदकर अपने स्थान पर आ जाती हैं। इसमें यदि कूदने वाला समूह सफल हो जाता है तो बैठी हुई लड़कियाँ अपने–अपने एक–एक हाथ निकालकर एक दूसरे की ऊंगलियों में ऊंगलियाँ फँसाकर चंगुल बनाकर हथेलियों को नीचे (सतह की तरफ) कर लेत हैं। जिसे डंडा कहा जाता है। पुनः खड़ी लड़कियाँ पूर्व की भाँति एक के बाद एक कूदकर जगह पर आ खड़ी होती हैं। बैठी हुई लड़कियाँ हथेली आकाश की तरफ कर लेती हैं। पुनःखड़ी लड़कियाँ पूर्व की भाँति कूदती हैं। सफल होने पर बैठी हुई लड़कियाँ दोनों की चंगुल पूर्व की भाँति बनाती हैं, इसे दो डंडे बोला जाता है। इसमें भी हथेलियाँ पहले सतह की तरफ फिर आकाश की तरफ रखी जाती हैं। कूदने वाली लड़कियाँ सफल होने पर बैठी हुई लड़कियाँ चंगुल बने अपने हाथों को बिना चंगुल खुले हाथ दूर–दूर कर कुण्डा बनाती हैं। अब खड़ी हुई लड़कियाँ इस कुण्डे में अपने दोनों पैरों को साथ–साथ करके कूदती हैं और कूदकर ही निकलती हैं। सफल होने पर बैठी हुई दोनों लड़कियाँ अपने पैरों के पंजों से इस प्रकार कुण्डी बनाती हैं कि एक दूसरे के अँगूठे से अँगूठा मिला रहे तथा स्वयं के दोनों पैरों की एड़ियाँ आपस में मिली रहें। पुनःखड़ी हुई लड़कियाँ एड़ियों से बनी कुंडी को पार करती हैं। ऐसा करने पर यदि पैर छू जाये तो दाम चला जाता है। फिर बैठी हुई लड़कियाँ दाँव देने लगती हैं। इस प्रकार यह खेल घंटों चलता रहता है।